काबा का सफ़र

मौलाना सैयद जलालुद्दीन उमरी

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम
"शुरू अल्लाह के नाम से जो बड़ा मेहरबान, निहायत रहमवाला है।"

दो शब्द

1990 ई॰ में मुझे पहली बार उमरा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसी मौक़े पर सऊदी अरब के तमाम अहम मक़ामात (स्थलों) का दौरा भी किया, बहुत-सी चीज़ें देखीं। जहाँ-जहाँ मौक़ा मिला लोगों के सामने इस्लाम की दावत पेश करने और उनकी इस्लाह करने की ख़िदमत अंजाम दी। इसकी मुख़्तसर-सी रूदाद उर्दू मासिक पत्रिका तहक़ीक़ाते-इस्लामी (अलीगढ़) के जनवरी-मार्च 1990 ई॰ के अंक में प्रकाशित हुई।

1993 ई॰ में अल्लाह तआला ने मुझे हज की तौफ़ीक़ दी और साथ ही मदीना मुनव्वरा की ज़ियारत नसीब हुई। यहाँ से संयुक्त अरब अमारात के सफ़र पर रवाना हुआ। दुबई, अबूज़हबी, शारजह, अल-ऐन और रासुलख़ैमा जाना हुआ। क़तर में एक हफ़्ता ठहरा। इसके बाद बहरीन गया। चार-पाँच रोज़ वहाँ रहा। वहीं से वतन के लिए वापसी हुई। इस सफ़र की कोई रूदाद लिखी न जा सकी।

1997 ई॰ में अल्लाह तआला ने दोबारा हज करने का सौभाग्य प्रदान किया। इस बार बीवी साथ थीं। इस मुबारक सफ़र की तफ़सील, तहक़ीक़ाते-इस्लामी के जुलाई-सितम्बर 1997 ई॰ के अंक में प्रकाशित हुई। उसमें रूदादे-सफ़र के साथ हज की तारीख़ (इतिहास), उसके मक़सद और फ़ायदों पर रौशनी डाली गई थी। साथ ही हज का तरीक़ा और उसके ज़रूरी अह्काम व मसाइल भी बयान हुए थे। कुछ दोस्तों ने उन लेखों को बहुत पसन्द किया। उन्होंने उन लेखों में जज़बात की गरमी महसूस की और कुछ नई बातें उन्हें मिलीं। अब उन लेखों को किताब की शक्ल में प्रकाशित किया जा रहा है।

लेखों में रह गई ग़लतियों को ठीक कर लिया गया है और ज़रूरत के मुताबिक़ इनमें संशोधन भी किया गया है। इससे उम्मीद है कि यह

लेखों में रह गईं ग़लतियों को ठीक कर लिया गया है और ज़रूरत के मुताबिक़ इनमें संशोधन भी किया गया है। इससे उम्मीद है कि यह किताब और ज़्यादा मुफ़ीद साबित होगी। अल्लाह से दुआ है कि यह मामूली-सी कोशिश फ़ायदेमन्द हो। इसके ज़रीए से लोगों के अन्दर हज का शौक़ पैदा हो और इससे उनको हज के मक़सद को समझने में मदद मिले।

इस किताब में कुछ दोस्तों से मुलाक़ात का ज़िक्र है और वे जो ख़िदमत अंजाम दे रहे थे, उसका ज़िक्र है। उसे उसी वक़्त की रूदाद समझना चाहिए। अब उनमें से कुछ दोस्त दूसरे स्थानों पर चले गए हैं। कुछ वतन वापस लौट आए हैं और हालत के अनुसार उनकी मसरूफ़ियतें भी बदल गई हैं।

इस किताब के उर्दू में कई एडीशन निकल चुके हैं। अब इसे हिन्दी ज़बान में भी प्रकाशित किया जा रहा है।

आख़िर में फिर दुआ है कि अल्लाह तआला इन पन्नों को अपनी मेहरबानी से क़बूल फ़रमाए और लेखक के लिए इन्हें आख़िरत का सामान बना दे।

जलालुद्दीन

28 जनवरी, 1999 ई०

एक माह सऊदी अरब में

सऊदी अरब में हिन्दुस्तान के जो लोग नौकरी के सिलसिले में रह रहे हैं, उनकी तादाद तीन लाख के क़रीब बताई जाती है। उनमें यूनिवर्सिटियों के लेक्चेरर और प्रोफ़ेसर्स भी हैं, डॉक्टर्स और इंजीनियर्स भी, मज़दूर और कारीगर भी हैं और मस्जिदों के इमाम व मुअज़्ज़िन भी; इस तरह ये लोग हर तबक़े से ताल्लुक़ रखते हैं और मुख़्तलिफ़ छोटी-बड़ी ख़िदमात अंजाम दे रहे हैं।

मेरे कुछ दोस्त, जो एक मुद्दत से सऊदी अरब में रह रहे हैं और मुझसे मुहब्बत करते हैं, उनकी ख़ाहिश थी कि मैं सऊदी अरब आऊँ और कुछ वक़्त उनके साथ गुज़ारूँ। पिछले साल इसकी उन्होंने बाक़ायदा दावत भी दी थी, लेकिन मैं अपनी कुछ मजबूरियों की वजह से न जा सका। अल्लाह तआला ने इस साल इसका मौक़ा दिया।

जिद्दा पहुँचे

15 फ़रवरी, 1990 ई॰ को 1:30 बजे एयर इण्डिया से रवानगी थी। सफ़र से पहले ही मैं उमरा का इरादा कर चुका था। ख़ुशक़िस्मती यह कि उसी जहाज़ से अज़ीज़ दोस्त जनाब सालेह-बिन-अली-शबीबी साहब भी उमरा पर जा रहे थे। उनकी वजह से सफ़र में बड़ी सहूलत और आसानी रही। हम दोनों ने दिल्ली एयरपोर्ट पर ही एहराम बाँध लिया। वहीं ज़ुहर और अस्र की नमाज़ एक साथ अदा की। 6:30 बजे जिद्दा एयरपोर्ट पहुँचे तो मग़रिब का वक़्त था। मग़रिब की नमाज़ एयरपोर्ट पर पढ़ी। कस्टम वग़ैरह से फ़ारिग़ होकर 8 बजे के क़रीब बाहर निकले तो ब्रादर जलील असग़र साहब, जनाब मुहम्मद अब्दुल-अज़ीम साहब, अब्दुल-क़य्यूम साहब और सईद शबीबी साहब वग़ैरा मौजूद थे। दोस्तों के साथ, रात जिद्दा में गुज़ारी।

हरम की तरफ़ रवानगी

फ़ज्र की नमाज़ के बाद मक्का मुकर्रमा के लिए रवाना हुए। हम दोनों के साथ मुहतरम मुहम्मद अब्दुल-अज़ीम साहब, सईद शबीबी साहब और मुहतरम मुजीबुर्रहमान साहब के नौजवान बेटे ने भी उमरा का एहराम बाँध लिया। मुहम्मद अब्दुल-अज़ीम साहब 'अल-ख़ुबर' से इसी इरादे से आए थे कि वे मेरे साथ उमरा करेंगे, इसके लिए मैं उनका बहुत ही एहसानमन्द हूँ।

16 फ़रवरी, जुमे के दिन यह छोटा-सा क़ाफ़िला सईद शबीबी साहब की गाड़ी में जिद्दा से रवाना हुआ। रास्ते भर सोचता रहा कि जिस जगह दुनिया, इख़लास और मुहब्बत की दौलत ले जाती है, वहाँ एक गुनहगार गुनाहों की पोट लेकर हाज़िर होगा। लेकिन अल्लाह तआला की रहमत बहुत ज़्यादा हैं। वह मेरे गुनाहों को नहीं, अपने रहमो-करम को देखेगा—

"ऐ अल्लाह, तेरी मग़फ़िरत हमारे गुनाहों से ज़्यादा वसीअ है और अपने (कर्मों) से ज़्यादा तेरी रहमत पर हमें भरोसा है।"

इसी एहसास के साथ सफ़र करता रहा, कार सौ किलोमीटर प्रति घंटा की रफ़्तार से चलती रही, थोड़ी देर में निगाहों के सामने मक्का मुकर्रमा था; वह सरज़मीन थी, जिसे इबराहीम ख़लील *(अलैहि॰)* ने आबाद किया, जहाँ इसमाईल *(अलैहि॰)* ज़बीहुल्लाह ने ज़िन्दगी गुज़ारी जिसकी गोद में दोनों जहाँ के सरदार मुहम्मदे-अरबी *(सल्ल॰)* ने, जिनके नाम पर हज़ार बार भी क़ुरबान हो जाऊँ तो कम है, परवरिश पाई, वह मक्का जो हर दौर में ख़ुदा के बेशुमार बन्दों के दिलों का मरकज़ रहा जो नूर का सरचश्मा है, जहाँ से दुनिया को हिदायत की रौशनी मिली और नजात का रास्ता मिला।

़ुदा का घर सामने है

अब काबा (हरम) के क़रीब हमारी गाड़ी रुक गई। वह काबा ासकी अज़मत व पाकी के ख़याल से दिल ख़ाली हो तो ईमान की ात छिन जाए, जिसके चप्पे-चप्पे पर ख़ुदा के बेशुमार बन्दों ने अपनी शांनियाँ रगड़ी हैं और जिसका ज़र्रा-ज़र्रा उनके आँसुओं का समन्दर पिए ए है, जहाँ क़दम-क़दम पर ख़ुदा की ख़ुशबू फूटती है, जहाँ ज़िक्र व क्र के तराने हर तरफ़ गूँजते हैं, जहाँ हर तरफ़ रहमत के बादल ंडराते हैं, जहाँ हर आन इनायात की बारिश होती है, इसी हरम के ामने, हाँ! इसी मुक़द्दस हरम के सामने चन्द लम्हे रुककर सोच रहा ा कि ख़ुदा की रहमत को गुनाहगार हाथों से कैसे समेटूँ और इस ाहार से अपना दामन कैसे भरूँ?

अब हम बाबुस्सलाम से ख़ाना-काबा की तरफ़ बढ़ रहे थे। दिल ेइख़्तियार ख़ुदा के घर की तरफ़ खिंच रहा था। जी चाह रहा था कि ौड़कर चिमट जाऊँ। अपने हाथ देखे, दोनों हाथ ख़ाली थे। कोई ौग़ात या उपहार न था, लेकिन यह जानता था कि जिस दरबार में जा रहा हूँ, वह ग़नी और बेनियाज़ है। उसे किसी चीज़ की हाजत और ज़रूरत नहीं है। वह बड़ा दाता है। वह किसी को ख़ाली हाथ लौटाते हुए शर्माता है। मैंने देखा कि अल्लाह के हज़ारों बन्दे परवानों और पतिंगों की तरह उसके घर के तवाफ़ में तस्बीह व हम्दो-सना में, दुआओं में, नमाज़ में और रोने और गिड़गिड़ाने में लगे हुए हैं। ख़याल आया कि क्या अजब कि इन नेक बन्दों के साथ इस गुनहगार की भी मग़फ़िरत हो जाए।

"ये वे लोग हैं कि इनके पास बैठनेवाला महरूम नहीं रहता।"

(हदीस : मुसनद अहमद)

उमरा अदा किया

खुदा के घर का तवाफ़ किया। मुहम्मद अब्दुल-अज़ीम साहब कं कोशिश से हजरे-असवद को बोसा देने की सआदत (सौभाग्य) मिली मक़ामे-इबराहीम पर नमाज़ पढ़ी, दुआ की, अपने लिए बीवी-बच्चों वे लिए, बूढ़ी माँ के लिए और दोस्तों के लिए। यही तमन्ना है कि ज़िन्दर्ग उसके दीन की ख़िदमत में गुज़र जाए। उसके बाद सफ़ा और मरवा वे बीच सई की, बालों का क़स्र करवाया यानी बालों को कटवाया। जं भरके ज़मज़म पिया। मस्जिदे-हराम में ही जुमा की नमाज़ अदा की।

मुक़द्दस मक़ामात की ज़ियारत

जुमा के लिए जलील असग़र साहब, दो-एक साथियों के साथ हर पहुँच गए। नमाज़ के बाद खाने से फ़ारिग़ हुए। अब यह क़ाफ़िला व गाड़ियों में मुक़द्दस मक़ामात की ज़ियारत (पवित्र स्थलों के दर्शन) वे लिए रवाना हुआ। मिना देखा। जमरात देखे। अरफ़ात देखा जबले-रहमत पर पहुँचे। दोस्तों ने दुआ के लिए कहा। दुआ से पहः मैंने अर्ज़ किया कि अल्लाह तआला ने हज़रत इबराहीम *(अलैहि०)* क हुक्म दिया था कि वे हज का एलान कर दें। रिवायतों में आता है वि हज़रत इबराहीम *(अलैहि०)* ने अर्ज़ किया कि ऐ अल्लाह! मेरे चारों तर पहाड़ ही पहाड़ हैं। दूर-दूर तक कोई आबादी नहीं है, इन पहाड़ों वं बीच में मेरी आवाज़ कहाँ तक पहुँचेगी और कौन सुनेगा? हुक्म हुअ तुम एलान कर दो, आवाज़ का पहुँचाना हमारा काम है। हज़रा इबराहीम *(अलैहि०)* ने हुक्म को पूरा किया और हज का एलान क दिया। पहाड़ झुक गए, ताकि यह आवाज़ दूर-दूर तक पहुँचे। चुनाँ ज़मीन के चप्पे-चप्पे में यह आवाज़ पहुँची, यहाँ तक कि माँओं के पे में बच्चों ने भी यह आवाज़ सुनी।

ये रिवायतें शायद ज़्यादा भरोसेमन्द नहीं हैं, अल्लाह तआला व ज़ात से यह नामुमकिन भी नहीं है कि हक़ीक़त में हज़रत इबराही

(अलैहि॰) की आवाज़ पूरी दुनिया में गूँज गई हो। यह इस बात की ताबीर (व्याख्या) भी हो सकती है कि दुनिया के हर हिस्से में यह आवाज़ पहुँचेगी। आनेवाली नस्लों में इसकी चर्चा होगी और दुनिया के चारों तरफ़ से लोग ख़ाना-काबा की ज़ियारत व दीदार के लिए आएँगे। चुनाँचे आज हम देख रहे हैं कि हज़रत इबराहीम *(अलैहि॰)* ने जो आवाज़ बुलन्द की थी, वह पूरी दुनिया में सुनी जा रही है और हर तरफ़ से यहाँ तक कि कम्युनिस्ट ब्लॉक से भी लोग गरोह के गरोह, अल्लाहु अकबर की आवाज़ बुलन्द करते हुए ख़ुदा के इस घर की तरफ़ आ रहे हैं। इस्लाम की सरबुलन्दी का भी यही हाल है। उसकी आवाज़ बुलन्द हो तो बज़ाहिर उसे रोकने के लिए पहाड़ खड़े होंगे, लेकिन आख़िरकार अल्लाह ने चाहा तो वह हर जगह सुनी जाएगी। आज उसके असर को हो सकता है फ़ौरन ही महसूस न किया जाए, लेकिन वक़्त गुज़रने के साथ दुनिया उसकी तरफ़ लपकेगी और क़बूल भी करेगी। शर्त सिर्फ़ सच्ची नीयत और हिकमत के साथ कोशिश करने की है। इसके बाद हम सबने मिलकर दुआएँ कीं, अल्लाह तआला क़बूल फ़रमाए।

रात में मक्का मुकर्रमा से जिद्दा वापसी हुई, जिद्दा में दो-तीन दिन ठहरना हुआ। उसमें दोस्तों और दूसरे लोगों से बेझिझक मुलाक़ातें रहती थीं, दीनी, इल्मी और फ़िक़ही मसाइल (समस्याओं) पर बातचीत होती थी, दोस्तों की फ़रमाइश पर कभी-कभी क़ुरआन मजीद का तर्जमा (अनुवाद), तफ़सीर (व्याख्या) करने का सौभाग्य मिल जाता था। भाई जलील असग़र साहब और जनाब मुजीबुर्रहमान साहब के यहाँ ठहरने का इन्तिज़ाम था। इन दोनों के मकान एक ही इमारत में पास-पास हैं। दोनों ने ख़ूब जी भरकर ख़ातिरदारी (आवभगत) की। अल्लाह उन्हें इसका बेहतरीन बदला दे।

अगली मंज़िल मदीना मुनव्वरा है

ख़ुदा का शुक्र है कि सऊदी अरब में हर जगह मुहब्बत करने और और चाहनेवाले मौजूद हैं। प्रोग्राम इस तरह बनाया गया था कि एक

महीने में सभी अह्म मक़ामात का दौरा हो जाए, ताकि सभी मक़ामात के दोस्तों से मुलाक़ात हो सके।

अब मदीना मुनव्वरा रवानगी थी। सुबह-सवेरे जिद्दा से रवाना हुआ। एयरपोर्ट पर अख़्तर हुसैन साहब मौजूद थे। उनका ताल्लुक़ कर्नाटक से है और वे इंजीनियर हैं। वे मुझे अपने घर ले गए। सामान रखा और नाश्ते से फ़ारिग़ हुए।

इन आँखों ने मस्जिदे-नबवी देखी

अख़्तर साहब से मैंने कहा कि सब से पहला काम मस्जिदे-नबवी *(सल्ल.)* में हाज़िरी है। उन्होंने मस्जिदे-नबवी तक रहनुमाई की और अपनी ड्यूटी पर चले गए। मस्जिदे-नबवी के दृश्यों और नज़ारे से आँखे फटी जा रही थीं। सुना है यहाँ जुनैद *(रह.)* व बायज़ीद *(रह.)* जैसे अल्लाहवालों की ज़बान भी बन्द हो जाती है। मेरी ज़बान भी खुल नही रही थी। अदब रुकावट बन रहा था। ज़ेहन उसकी इब्तिदाई तारीख़ में गुम था। एक-एक करके उसके नुक़ूश, ज़ेहन के पन्नों पर उभरने लगे। यही मस्जिद तालीम व तर्बियत का मरकज़ थी। यहाँ ज़िक्र व फ़िक्र और तालीम व तद्रीस यानी पढ़ने-पढ़ाने के हल्क़े क़ायम थे। यहाँ मुक़द्दमों के फ़ैसले होते थे। यहाँ फ़ौजों की तंज़ीम (संगठन) होती थी। यहाँ माले-ग़नीमत (पराजित शत्रु सेना का ज़ब्त माल) बाँटा जाता था। हाँ! यहीं से दुनिया की क़िस्मत का फ़ैसला हुआ। तारीख़ का रुख़ मोड़ा गया। क़ैसरो-किसरा के तख़्त उलटे गए। यहीं से दुनिया ने देखा कि दीन के साथ सियासत, ताक़त व हुकूमत के साथ अद्ल व इनसाफ़ और ज़ुह्द (संयम) व तक़वा के साथ अक़्लमन्दी और सूझ-बूझ जमा होती है। सीने में जज़बात का एक तूफ़ान उमड़ आया। उसका रुख़ कभी एक तरफ़ होता और कभी दूसरी तरफ़। कभी अपनी इस ख़ुशक़िस्मती पर नाज़ होता कि आज इस जगह पहुँचा दिया गया हूँ कि जहाँ की एक नमाज़, हज़ार नमाज़ों से अफ़ज़ल और बरतर है, जहाँ वह

हस्ती आराम कर रही है, जिसके नाम से हमारा वुजूद है, जिससे लगाव सबसे बड़ा शर्फ़ और जिसके ग़ुलामों का ग़ुलाम होना सबसे बड़ी खुशक़िस्मती है। कभी यह एहसास होता कि इस दरबार में तो पाक-साफ़ दिल का नज़राना पेश किया जाता है, मगर जो दिल गुनाहों से लतपत हो उसे कैसे पेश किया जाए? यहाँ टूटे हुए दिल की क़ीमत है, जो दिल पत्थर की तरह सख़्त हो वह कहीं रद्द न कर दिया जाए। फिर यह एहसास जाग उठा कि दुनिया के सबसे बड़े पाकीज़ा इनसान की यह आरामगाह है। यहीं से दुनिया ने तहारत व पाकीज़गी की बहार देखी है। मायूसी कुफ़्र है। ऐ ख़ुदा! पाकीज़गी से महरूम, लेकिन पाकीज़गी की तलब में तेरा एक गुनाहगार बन्दा यहाँ हाथ बाँधे, सिर झुकाए खड़ा है। ऐ अल्लाह! इसकी तलब में ख़ुलूस अता फ़रमा और इसे उससे ज़्यादा नवाज़ दे जितना यह चाहता है या चाह सकता है। इसकी तमन्नाएँ महदूद, लेकिन तेरा करम बेपायाँ (असीम) है। तू अपने शायाने-शान इसपर करम फ़रमा!

मैं ज़ुहर की नमाज़ से काफ़ी पहले मस्जिदे-नबवी पहुँच चुका था, लेकिन इसके बावजूद मस्जिद भरी हुई थी। हज़ारों लोग नमाज़, क़ुरआन की तिलावत और ज़िक्रो-अज़्कार व अल्लाह की याद में मशग़ूल थे। ज़ुहर की नमाज़ से फ़ारिग़ हुआ तो अतहर हुसैन साहब मिल गए और अपने घर ले गए। अस्र की नमाज़ हम दोनों ने मस्जिदे-नबवी ही में अदा की, पहले से तय था कि मुहतरम दोस्त डॉक्टर मुहम्मद अजमल इस्लाही साहब मस्जिदे-नबवी (हरम) में मिलेंगे, उन्हें देख कर तबीअत बहुत ख़ुश हुई। मसीहुर्रहमान साहब भी साथ थे, डॉक्टर ज़ियाउर्रहमान आज़मी उमरी मदनी साहब के यहाँ हम सबको चाय पर दावत थी। उनके घर पहुँचकर शानदार नाश्ता किया और चाय पी। वहीं मशहूर आलिम और स्कॉलर अब्दुर्रहीम साहब से मुलाक़ात हुई। अरबी अदब व साहित्य, उनका ख़ास विषय है। अभी हाल ही में उन्होंने जवालीक़ी की अल-मुअर्रिब को एडिट किया है और वह छप चुकी है। उन्होंने

उसकी एक कॉपी मुझे तोहफ़े में दी। मग़िरब की नमाज़ के लिए हम फिर मस्जिदे-नबवी पहुँच गए। डॉ॰ ज़ियाउर्रहमान भी साथ थे। नमाज़ के बाद 'रौ-ज़-तुम-मिन रियाज़िल-जन्नह' में दो रकअत नमाज़ के लिए बहुत मुश्किल से जगह मिली। रौज़ए-मुबारक के पास पहुँचकर दरूदो-सलाम पढ़ा और आँसू पोंछते हुए आगे बढ़ गया। रात में अख़्तर हुसैन साहब के घर कुछ दोस्त व अहबाब इकट्ठा थे। अच्छी मजलिस रही।

मदीना के मुक़द्दस मक़ामात की ज़ियारत

दूसरे दिन मसीहुर्रहमान साहब और एक दोस्त के साथ मदीना मुनव्वरा के मुक़द्दस मक़ामात की ज़ियारत की। मस्जिदे-क़ुबा और मस्जिदे-अबू-बक्र *(रज़ि॰)* में नमाज़ पढ़ी। 11:30 बजे के क़रीब जामिआ मदीना मुनव्वरा के क़रीब तयशुदा प्रोग्राम के तहत एक मक्तबा (पुस्तकालय) में पहुँचे। वहाँ डॉक्टर इस्लाही साहब इन्तिज़ार कर रहे थे, उनके साथ दो-एक मक्तबे देखे। अजमल साहब किताबों के आशिक़ हैं। उन्हें अरबी की नई और पुरानी किताबों के नए एडीशनों के बारे में बड़ी जानकारियाँ रहती हैं। घर पर अच्छी-ख़ासी लाइब्रेरी बना रखी है। दोपहर का खाना उन्हीं के घर था।

रियाज़ रवानगी

मदीना मुनव्वरा का क़ियाम बहुत ही कम रहा। जी चाह रहा था कि कुछ दिन और क़ियाम हो। दोस्तों की भी ज़िद थी, लेकिन प्रोग्राम के तहत मुझे शाम तक रियाज़ पहुँचना था। डॉ॰ मुहम्मद अजमल साहब, मसीहुर्रहमान साहब, अख़्तर हुसैन साहब और एक दोस्त ने अस्र के बाद मदीना एयरपोर्ट पर मुझे रुख़सत किया। मग़रिब के वक़्त रियाज़ पहुँचा। एयरपोर्ट पर सैयद एजाज़ अहमद तिर्मिज़ी मौजूद थे। उनसे अज़ीज़ों के-से ताल्लुक़ात हैं। वे मुझे अपने घर ले गए, चाय और नमाज़

से फ़ारिग़ होने के बाद मुहतरम प्रोफ़ेसर अब्दुल-हक़ अंसारी साहब के यहाँ पहुँच गया, वहीं क़ियाम था, अब्दुल-हक़ साहब का घर अपना घर था। बड़ा आराम रहा। उनकी शख़्सियत और व्यक्तित्व में इल्मी संजीदगी के साथ ख़ुलूस व मुहब्बत भी मौजूद है, उनके दोस्त व अहबाब उनसे बड़ी मुहब्बत करते हैं। अपनी मसरूफ़ियतों (व्यस्तताओं) के बावजूद उन्होंने मेरे साथ काफ़ी वक़्त गुज़ारा, जिसके लिए मैं उनका शुक्रगुज़ार हूँ। रियाज़ में तीन दिन ठहरा। उस दौरान राब्तए-आलमे-इस्लामी के हाल में एक तक़रीर भी हुई। मौज़ूअ (विषय) था 'हिन्दुस्तान में तहरीके-इस्लामी की रफ़्तारे-कार।' हाल भरा हुआ था। मैंने महसूस किया कि सुननेवालों ने मेरी बातें बड़े ध्यान से सुनीं।

पूरबी इलाक़े

अब मुझे सऊदी अरब के पूरबी इलाक़ों तक पहुँचना था। उसकी पहली मंज़िल ज़हरान (एक शहर) थी। रियाज़ एयरपोर्ट पर हैदराबाद के अब्दुल-अज़ीम साहब ने मुझे रुख़सत किया। अब्दुल-अज़ीम साहब बहुत काम करनेवाले और सरगर्म शख़्सियत के मालिक हैं, पहले फ़ौज में थे, लेकिन इस्लामी लिट्रेचर से मुतास्सिर होकर उससे इस्तीफ़ा दे दिया। आला तालीम हासिल की। अब सऊदी अरब में रह रहे हैं। उनकी पाँच साल की बच्ची को देखकर तबीअत बहुत ख़ुश हुई। उसकी मासूम ज़बान से अरबी में बहुत-सी दुआएँ सुनीं। इस्लाम के बारे में उसे इतनी मालूमात (जानकारियाँ) थीं कि इस उम्र के बच्चों में मुश्किल ही से मिलेंगी। अल्लाह तआला उसे ख़ुशो-ख़ुर्रम रखे और दीन व दुनिया में बामुराद करे।

ज़हरान एयरपोर्ट पर जनाब रिज़वानुल्लाह ख़ान साहब और आबिद सुहैल साहब मौजूद थे। रिज़वान साहब, ज़हरान यूनिवर्सिटी (यू॰ पी॰ एम॰) में उस्ताद हैं। उनसे उस वक़्त से ताल्लुक़ात हैं, जब वे अलीगढ़ में तालीम (शिक्षा) पा रहे थे। आबिद सुहैल साहब रिसर्च कर

रहे हैं। सीधे हम लोग रिज़वान साहब के घर पहुँचे। एक साहब के मकान पर अस्र की नमाज़ के बाद औरतों को दीन की कुछ ज़रूरी बातें बताई गईं। यूनिवर्सिटी की मस्जिद में इशा की नमाज़ के बाद ख़िताब रहा। उसमें यह बताने की कोशिश की गई कि अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद *(सल्ल.)* ने अपने तेईस साल के नुबूवत के दौर में दावते-इस्लामी का काम किस तरह अंजाम दिया? रात के खाने पर बहुत-से दोस्त-अहबाब इकट्ठा थे। बड़ी ख़ुशगवार मजलिस रही, प्रोफ़ेसर ज़ग़लुल-नज्जार साहब ज़हरान यूनिवर्सिटी में प्रोफ़ेसर हैं। उनसे मस्जिद ही में मुलाक़ात हुई। डॉक्टर अब्दुल-हक़ फ़ोन पर मेरा परिचय करा चुके थे। बड़ी गर्मजोशी, तपाक और मुहब्बत से मिले। उनके घर चाय भी पी। बड़े ख़ुदातरस और अल्लाहवाले बुज़ुर्ग हैं। दो-एक मुलाक़ात ही में अपनी शराफ़त और नेक-नफ़्सी का नक़्श ज़ेहन पर बिठा दिया।

पूरबी इलाक़े में ज़हरान के अलावा अरामकू कैम्प, अल-खुबर, दम्माम, रास तनूरा, अबक़ीक़ और तहलिया जाने का इत्तिफ़ाक़ हुआ। तहलिया में समन्दर के पानी को साफ़ करने और पीने के क़ाबिल बनाने का शायद दुनिया का सबसे बड़ा प्लांट है। दूर ही से उसे देख सका। हर ज़गह दोस्तों से बेपनाह मुहब्बत मिली। रास तनूरा में एक स्कूल में प्रोग्राम था। इस एक हफ़्ते के दौरे में दम्माम मरकज़ (केन्द्र) बना रहा। वहीं से अलग-अलग मक़ामात और स्थानों पर आना-जाना होता होता रहता था। दम्माम के पूरे क़ियाम में अहमद अब्दुल-अज़ीम साहब और उनके छोटे भाई अहमद अब्दुल-अलीम साहब का मेहमान रहा। उनके ख़ुलूस, मुहब्बत और ख़ातिर-तवाज़ो (आवभगत) को भूल नहीं सकता।

रियाज़ दोबारा आमद (आगमन)

एक हफ़्ता रुकने के बाद 2 मार्च, 1990 ई॰ को दोबारा रियाज़ वापसी हुई। वापसी से पहले मुहतरम अब्दुल-अज़ीज़ साहब और जनाब मुजीब साहब के साथ 'बहरीन' का पुल देखा। समन्दर पर इतना लम्बा

ुल पहली मर्तबा देखने का इत्तिफ़ाक़ हुआ। उन ही दोस्तों ने रुख़सत केया। रियाज़. एयरपोर्ट पर लेने के लिए मुहतरम दोस्त जनाब हुसैन ज़ुलक़रनैन साहब मौजूद थे। उनके घर पहुँचा। वह जिस फ्लैट में रहते हैं, उसकी पहली मंज़िल में अज़ीज़म अमीनुल-हुदा फ़लाही रहते हैं। इस बार क़ियाम उनके घर पर रहा। उनसे ताल्लुक़ अलीगढ़ का है। इशा के बाद किसी न किसी दोस्त के यहाँ खाने का प्रोग्राम होता। उसमें बहुत से नए-पुराने दोस्तों से मुलाक़ात हो जाती। ख़ुदा का शुक्र है कि कोई मजलिस अल्लाह के ज़िक्र से ख़ाली नहीं रहती थी।

रियाज़ में एक लम्बे समय के बाद डॉक्टर अहमद तू तुंजी से मुलाक़ात हुई, बड़ी गर्मजोशी और मुहब्बत से मिले। इदारे का ज़िक्र आया तो कहा कि इस वक़्त करने का बड़ा काम यही है। इससे ज़ेहन की गिरहें खुलेंगी और तहरीकों को ग़िज़ा मिलती रहेगी। चलते वक़्त बुलूग़ुल-मराम की शरह (व्याख्या) और एक घड़ी तोहफ़े में दी। ज ज़ा हुल्लाह ख़ैरुलजज़ा—अल्लाह बदला दे, भलाई का बदला।

शैख़ अब्दुल-अज़ीज़-बिन-बाज़ (हफ़ि-ज़ हुल्लाह) से मुलाक़ात करने करने को जी चाह रहा था, एक दोस्त के साथ दारुल-इफ़्ता पहुँचा, लेकिन शैख़ की पहले से मसरूफ़ियतों (व्यस्तताओं) की वजह से मुलाक़ात न हो सकी। इतना मौक़ा न था कि मुलाक़ात की दोबारा कोशिश की जाती। भाई अबरार अहमद साहब इस्लाही के साथ मरकज़ अल-मलिक फ़ैसल-लिल-बुहूस वद्दरासातुल इस्लामिया जाने का मौक़ा मिला। उसके डायरेक्टर जनरल डॉ॰ ज़ैदुल-हुसैन (हफ़ि-ज़ हुल्लाह) से मुलाक़ात हुई। यह मरकज़ (मुख्यालय), कई मंज़िला शानदार इमारत में क़ायम है। उनके कहने पर कारकुनों (कार्यकर्ताओं) ने मरकज़ का मुआयना कराया। किताबों को तलाश करने, उनको निकालने, उन्हें अपनी जगह रखने का सारा काम कम्प्यूटर से होता है, मख़्तूतात (प्राचीन पांडुलिपियों) को महफ़ूज़ करने और जिल्दबन्दी जैसे कामों के लिए भी आधुनिक मशीनें लगी हुई हैं। इस तरह की व्यवस्था यक़ीनन

मग़रिबी मुल्कों में होगी, लेकिन किसी विकासशील देश में उसका वुजूद शायद ही हो। इस इदारे से रिसर्च और तहक़ीक़ का काम करनेवालों की इल्मी मदद भी की जाती है। अगर कोई रिसर्च करनेवाला कुछ मौज़ूआत (विषयों) पर यह जानना चाहे कि इसपर अब तक क्या काम हुआ है, आसानी से मालूम कर सकता है। इदारे से इस तरह की जानकारियाँ उसे घर बैठे मिल सकती हैं। मख़्तूतात की तफ़सील भी मालूम की जा सकती है।

इस बार जिन व्यक्तियों को फ़ैसल एवार्ड मिला, उनमें प्रोफ़ेसर ख़ुर्शीद अहमद और प्रोफ़ेसर मुहम्मद उमर छाबरा भी हैं। रियाज़ में रहने के दौरान उन हज़रात के एवार्ड पाने का समारोह था। दोनों हज़रात से ग़ाइबाना परिचय बरसों से था, दो-एक बैठकों में उनसे मुलाक़ात और बातचीत का मौक़ा मिला, बड़ी संजीदा और मुतास्सिर करनेवाली शख़्सियतें हैं। प्रोफ़ेसर ख़ुर्शीद अहमद ने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जो स्पष्ट व नुमायाँ इस्लामी ख़िदमात अंजाम दी हैं, यह एवार्ड उसी का एतिराफ़ था। प्रोफ़ेसर मुहम्मद उमर छाबड़ा इस्लामी अर्थशास्त्र के माहिर (विशेषज्ञ) हैं। अंग्रेज़ी में उनकी बहुत-सी तसानीफ़ (रचनाएँ) शाया (प्रकाशित) हो चुकी हैं। उन्हें सऊदी अरब की नागरिकता भी हासिल है।

डॉक्टर समीर अब्दुल-हमीद इबराहीम से कुछ दूसरे विद्वानों के साथ डॉ॰ अब्दुल-हक़ अंसारी के घर रात के खाने पर मुलाक़ात हुई। बड़ी बाग़ो-बहार शख़्सियत हैं। मिस्र के रहनेवाले हैं, लेकिन पाकिस्तान में उर्दू की बाक़ायदा तालीम पाई है। हिन्दुस्तान का भी दौरा कर चुके हैं। मिस्र में उर्दू के उस्ताद रह चुके हैं। इस वक़्त जामिअतुल-इमाम मुहम्मद-बिन-सऊदुल-इस्लामिया में प्रोफ़ेसर हैं। उनकी क़लम से बहुत-सी उर्दू किताबों के अनुवाद (तर्जमे) निकल चुके हैं। मेरी किताब "मुसलमान औरत के हुक़ूक़ और उनपर एतिराज़ात का जाइज़ा" देखी, तो कहा कि

सकी एक कॉपी भिजवा दीजिए। मैं इसका तर्जमा करूँगा। चुनाँचे कताब भेज दी गई।

मुझे अरबी के अहम स्रोतों (संदर्भ-ग्रंथों) की तलाश रहती है। ामिअतुल-इमाम मुहम्मद-बिन-सऊदुल-इस्लामिया, रियाज़ ने बहुत-से ोत प्रकाशित किए हैं। डॉ॰ अब्दुल-हक़ अंसारी साहब के साथ मक्तबा प्रकाशन-संस्था) के सेकेट्री और इंचार्ज से मुलाक़ात हुई। इदारे की रफ़ से किताबों की दरख़ास्त दी गई, तो उन्होंने ख़ुशी से फ़ौरन उसकी ंज़ूरी दे दी। (ज ज़ा हुमुल्लाह ख़ैरुल-जज़ा)

रियाज़ में क़ियाम के आख़िरी रोज़ WAMY की मस्जिद में मेरी क़रीर 'इस्लाम में औरत की सियासी व समाजी ख़िदमात' के विषय र हुई। छोटी-सी मस्जिद लोगों से भरी हुई थी। अल्हम्दुलिल्लाह तक़रीर वज्जोह से सुनी गई।

ापसी जिद्दा होकर

रियाज़ में छः-सात रोज़ बड़ी मसरूफ़ियत के गुज़रे। यहाँ से जिद्दा ापसी हुई। भाई अबरार अहमद साहब, भाई हुसैन ज़ुलक़रनैन साहब और अज़ीज़म सैयद एजाज़ अहमद तिर्मिज़ी ने विदा किया। जिद्दा एयरपोर्ट पर भाई जलील असग़र साहब मौजूद थे। रफ़ीक़े-मुकर्रम जनाब अहसन मुस्तक़ीमी साहब भी कष्ट उठाकर एयरपोर्ट आए। वे उमरा करने के लिए आए हुए थे।

तवाफ़े-विदाअ

जिद्दा में एक हफ़्ता क़ियाम रहा। उस दौरान अज़ीज़ दोस्त डॉ॰ इक़बाल मसऊद नदवी की दावत पर दोबारा मक्का मुकर्रमा हाज़िरी की सआदत मिली। रात के ग्यारह बजे जलील असग़र साहब के साथ तवाफ़ किया। ख़ुदा-ए-तआला ने अपने इस घर में वह कशिश रख दी है कि रात हो कि दिन, कोई वक़्त ऐसा नहीं होता जबकि उसके चारों

तरफ़ लोग परवानों की तरह तवाफ़ न कर रहे हों। रात में शाय़ औरतों की तादाद बढ़ जाती है, इसलिए ख़्वाहिश के बावजू हजरे-असवद को बोसा देना आसान न था। तवाफ़े-विदाअ किया, इस दुआ के साथ कि अल्लाह तआला बार-बार इस घर की हाज़िरी की सआदत अता फ़रमाए और वापसी हो गई।

ताइफ़ का सफ़र

इसी मुद्दत में मुहतरम डॉ॰ ज़फ़र अक़्दस जीलानी की दावत प तक़रीबन दो दिन के लिए ताइफ़ भी जाना हुआ। घूम-फिर कर देखा वह जगह भी देखी, जहाँ दोनों जहाँ के सरदार ख़ुदा के रसूल हज़रत मुहम्मद *(सल्ल.)* उस वक़्त बेहोश हो गए थे, जबकि ताइफ़ के सरदारों के इशारे पर ग़ुण्डों ने आप *(सल्ल.)* को लहू-लुहान कर दिया था और होश में आने के बाद रहमते-आलम *(सल्ल.)* ने उनकी हिदायत की दुआ की थी। इस जगह उसमानी दौर की बनाई हुई एक छोटी-सी मस्जिद भी है। ताइफ़ में मस्जिदे-हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास *(रज़ि.)* में नमाज़ पढ़ने की सआदत मिली। क़बीला बनू-साद यहाँ से सत्तर-अस्सी किलोमीटर के फ़ासले पर आबाद है। इसी क़बीलें से दाई हलीमा का ताल्लुक़ था। वहाँ जाने का इरादा था, लेकिन वक़्त की कमी की वजह से न जा सका। ताइफ़ ठंडा है और सऊदी अरब के लिहाज़ से सरसब्ज़ो-शादाब और हरा-भरा भी। रात में डॉ॰ ज़फ़र अक़्दस जीलानी साहब के मकान पर सूरा अन-निसा की कुछ आयतों का तर्जमा और तफ़सीर पेश करने का मौक़ा मिला। सुबह कार से जिद्दा वापसी हुई।

जिद्दा में मुहतरम दोस्त डॉ॰ नजातुल्लाह सिद्दीक़ी के साथ डॉ॰ अब्दुल्लाह नसीफ़ से थोड़ी देर के लिए मुलाक़ात हुई। उनकी ख़िदमत में मैंने अपनी दो किताबें 'मारूफ़ व मुनकर' का अरबी तर्जमा 'अल-अम्र बिल-मअरूफ़ व नह्य अनिल-मुनकर' और 'औरत और इस्लाम' का

अंग्रेज़ी तर्जमा 'WOMAN AND ISLAM' पेश कीं। मुहतरम दोस्त ही के साथ अल-मजमअुल-फ़िक़ही के इफ़्तिताही इजलास में शिर्कत हुई।

इदारा तहक़ीक़ात के लिए अरबी की अहम किताबों का ज़िक्र आया तो कई एक दोस्त उनकी ख़रीदारी के लिए तैयार हो गए। मेरे पुराने बे-तकल्लुफ़ दोस्त जनाब हबीब हामिद अब्दुर्रहमान अलकाफ़ साहब ने जनाब उमर-बिन-अब्दुल्लाह बफ़लह साहब से उसका ज़िक्र किया, तो उन्होंने कई हज़ार रुपयों की किताबों का इन्तिज़ाम करा दिया। अल्लाह तआला अच्छा बदला दे।

मदीना मुनव्वरा में किताबों का ज़िक्र आया तो एक नौजवान दोस्त ने जो हैदाबाद से ताल्लुक़ रखते हैं और अच्छी किताबत करते हैं, अफ़सोस कि मैं उनका नाम भूल गया, क़ुरतबी की तफ़सीर ख़रीद कर दे दी।

इस सफ़र में किस-किस का नाम लिया जाए, दोस्तों से इस क़द्र ख़ुलूस व मुहब्बत मिली कि अरसे तक उसकी याद रहेगी। उसके इन्तिज़ाम में भाई अबरार अहमद इस्लाही और भाई जलील असग़र साहब की कोशिशों का बड़ा दख़ल है। उन्होंने जिस तरह उसके लिए दौड़-धूप की और वक़्त दिया, प्रोग्राम को मुनज़्ज़म किया, उसके लिए बेहद शुक्रगुज़ार हूँ। अल्लाह तआला इसके अज्रो-सवाब से नवाज़े।

अलीगढ़ लौट आया

16 मार्च, 1990 ई॰ को भाई अहसन मुस्तक़ीमी साहब के साथ वापसी हुई। जिद्दा एयरपोर्ट पर जलील असग़र साहब, मुजीबुर्रहमान साहब, अब्दुल-क़य्यूम साहब और कुछ दूसरे दोस्तों ने रुख़सत किया। रात में आठ बजे के बाद दिल्ली एयरपोर्ट से बाहर निकले। तक़रीबन बारह बजे रात में अलीगढ़ अपने घर पहुँचा।

हज का सफ़र

अल्लाह ने पाँच साल पहले 1993 ई॰ (1413 हिजरी) में हज की तौफ़ीक़ अता फ़रमाई थी। उसके बाद ही से मेरी बीवी भी इस ख़ाहिश और तमन्ना का इज़हार करने लगीं कि वे भी हज करना चाहती हैं। इधर उनपर हज फ़र्ज़ भी हो गया, तो उनका इसरार बढ़ने लगा। अल्लाह तआला ने इस साल 1997 ई॰/1417 हिजरी में उसकी सूरत पैदा फ़रमाई।

हज की फ़र्ज़िय्यत और फ़ज़ीलत

हज की सआदत बहुत बड़ी सआदत है। हमारे उलमा ने लिखा है कि यह एक ऐसी इबादत है जो अपने अन्दर बहुत-सी इबादतों और नेकियों को समेटे हुए है। इसमें नमाज़ है, ज़िक्रो-फ़िक्र है, तस्बीह व तह्मीद और तक्बीर व तह्लील है, तवाफ़ और सई है, ख़ुदा की राह में भाग-दौड़ और क़ुरबानी है। इसमें जिस्मानी मेहनत व मशक़्क़त के साथ ख़ुदा की राह में माल ख़र्च करना भी है। यह बहुत-सी इबादतों का मजमूआ (संग्रह) है। यह एक तरह का जिहाद है। बुख़ारी की हदीस है कि हज़रत आइशा *(रज़ि॰)* ने ख़ुदा के रसूल *(सल्ल॰)* से जिहाद में शरीक होने की इजाज़त चाही, तो आप *(सल्ल॰)* ने कहा– "तुम औरतों का जिहाद हज है।" एक और हदीस में है– "तुम्हारे लिए बेहतरीन जिहाद हज है।" (बुख़ारी, किताबुल-जिहाद, बाबे-जिहादुन्निसा)

एक मुसलमान जो आक़िल व बालिग़ है, आज़ाद है, तन्दुरुस्त है, सफ़र के दूसरे ख़र्च बर्दाश्त कर सकता है, औरत के साथ मह्रम[1] भी हो तो हज फ़र्ज़ हो जाता है। उसमें देरी मुनासिब नहीं है।

[1]: महरम : वह शख़्स जिससे शादी नहीं हो सकती, जैसे, बाप, भाई, वग़ैरह।

"लोगों पर अल्लाह का यह हक़ है कि जो उस घर तक पहुँचने की ताक़त व सकत रखता हो वह उसका हज करे।"

(क़ुरआन, 3 : 97)

हज क़ी हदें और आदाब

हज में जिन हदों और आदाब का ख़याल रखना चाहिए, उन्हें क़ुरआन ने इन शब्दों में बयान किया है—

"हज के महीने सब को मालूम हैं। जो शख़्स उन मुक़र्रर महीनों में हज की नीयत करे, उसे ख़बरदार रहना चाहिए कि हज के दौरान वह कोई शहवानी (काम-वासना-सम्बन्धी) काम, कोई बदअमली, कोई लड़ाई-झगड़े की बात न करे, और जो नेक काम तुम करोगे, वह अल्लाह की जानकारी में होगा। हज के सफ़र के लिए ज़ादे-राह साथ लेते जाओ और सबसे बेहतर ज़ादे-राह, परहेज़गारी है। तो ऐ होशमन्दो, मेरी नाफ़रमानी से बचो।" (क़ुरआन, 2 : 197)

हज की फ़ज़ीलत ख़ुदा के रसूल *(सल्ल.)* की ज़बानी सुनिए—

एक मोमिन का दिल आख़िरत की कामयाबी के तसव्वुर से ख़ाली नहीं हो सकता। जन्नत उसका मक़सद है। नबी *(सल्ल.)* ने हज्जे-मबरूर का बदला, जन्नत क़रार दिया है। हज्जे-मबरूर वह हज है, जिसमें पूरे इख़लास के साथ उसके अह्काम अंजाम दिए जाएँ और वह ख़ुदा के यहाँ मक़बूल हो जाए। हज़रत अबू-हुरैरा *(रज़ि.)* की रिवायत है कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

"एक उमरा दूसरे उमरा तक की कोताहियों के लिए कफ़्फ़ारा बन जाता है और हज्जे-मबरूर का बदला बस जन्नत है।"

(हदीस : बुख़ारी, किताबुल-उमरा; मुस्लिम, किताबुल-हज)

एक और रिवायत सुनिए—

"जिसने उस घर (काबा) का हज किया, जिन्सी ताल्लुक़ (यौन-सम्बन्ध) और गन्दी बातों से बचा रहा, गुनाह और बुरे कामों से दूर रहा तो वह इस तरह गुनाहों से पाक व साफ़ होकर लौटेगा, जैसे उसकी माँ ने उसे जना था।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

हज का ताल्लुक़ हज़रत इबराहीम *(अलैहिस्सलाम)* से

हज का ताल्लुक़ हज़रत इबराहम *(अलैहि.)* की पाक ज़िन्दगी के कुछ अह्म वाक़िआत से है। हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* का अल्लाह तआला ने हर तरह से इम्तिहान लिया और वे सख़्त व कड़ी आज़माइशों में डाले गए। जब वे इन सबसे कामयाब गुज़र गए, तो दुनिया की इमामत (सरदारी) उन्हें अता की गई।

"याद करो जब इबराहीम को उसके रब ने कुछ बातों में आज़माया और वह उन सब में पूरा उतर गया तो उसने कहा : मैं तुझे सब लोगों का पेशवा बनानेवाला हूँ। इबराहीम ने अर्ज़ किया : और क्या मेरी औलाद से भी यही वादा है? उसने (ख़ुदा ने) जवाब दिया : मेरा वादा ज़ालिमों के लिए नहीं है।" (क़ुरआन, 2 : 124)

इसी तरह के एक इम्तिहान से गुज़ार कर हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* के हाथों ख़ान-काबा की तामीर हुई। वह ईमानवालों की इबादात का मरकज़ (केन्द्र) बना और उसके हज व ज़ियारत का हुक्म दिया गया। हज का इतिहास हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* के इतिहास से जुड़ा हुआ है। इस इतिहास का हर पन्ना, अल्लाह की मुहब्बत, उसकी बन्दगी, इताअत और अल्लाह के सामने अपनी हवालगी की क़लम से लिखा गया है।

हज़रत हाजरा और हज़रत इसमाईल *(अलैहि.)* का मक्का में आबाद होना

अल्लाह का फ़ैसला हुआ कि मक्का की धरती तौहीद (एकेश्वरवाद) का मरकज़ बने। वहाँ उसका घर तामीर हो और वह उसके माननेवालों का क़िब्ला व काबा क़रार पाए। मक्का, पर्वतों के सिलसिले से घिरा हुआ बंजर ज़मीन का टुकड़ा था। यह एक ऐसी घाटी थी, जहाँ किसी तरह की कोई चीज़ पैदा नहीं होती थी। किसी जानदार की ज़िन्दगी का कोई सामान न था, जहाँ इनसान क्या, जानवरों और परिन्दों का भी गुज़र न होता था। उसे आबाद करने के लिए बाहर से किसी क़ौम और क़बीले को लाकर बसाया नहीं गया, बल्कि हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* को हुक्म हुआ कि वह अपनी बीवी हाजरा और अपनी इकलौती औलाद हज़रत इसमाईल को जो अभी माँ की गोद में परवरिश पा रहे थे और जो अभी माँ के दूध ही पर पल-बढ़ रहे थे, यहाँ छोड़ आए। इस हुक्म की तामील कितनी दुश्वार और मुश्किल रही होगी? लेकिन मामला हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* का था, वहाँ हर मुहब्बत पर ख़ुदा की मुहब्बत ग़ालिब आ चुकी थी।

हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* एक लम्बा सफ़र तय करके शाम (सीरिया) से इस बंजर घाटी में पहुँचे और एक छायादार जंगली पेड़ के नीचे चहेती बीवी और मासूम बच्चे को पहुँचा दिया। कुछ खजूरें और पानी की एक छागल बीवी के हवाले की और शाम (सीरिया) की तरफ़ वापस होने लगे। बीवी ने पूछा कि इस बंजर मैदान में जहाँ न पानी है और न कोई और चीज़, इन पहाड़ों के दरमियान कहाँ छोड़े जा रहे हैं? यहाँ न कोई इनसान नज़र आ रहा है और न खाने-पीने और रहने का कोई इन्तिज़ाम है। हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* चुप रहे। शायद जज़बात (भावनाओं) की ज़्यादतियों से ज़बान से कोई बात न निकल रही हो। बीवी ने फिर पूछा : क्या अल्लाह का यह हुक्म है? जवाब मिला : हाँ।

इसपर अल्लाह की उस बन्दी ने जो हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* की बीवी और इसमाईल *(अलैहि.)* की माँ थी, ख़ुदा के हुक्म को तस्लीम कर लिया और कहा कि अल्लाह के फ़रमान पर आपने यह क़दम उठाया है तो वह हमारी हिफ़ाज़त करेगा और हमें हलाक न होने देगा। अल्लाह ने हक़ीक़त में उन्हें हलाक नहीं होने दिया और हमेशा रहनेवाली ऐसी ज़िन्दगी बख़्शी, जिसपर हज़ारों-लाखों ज़िन्दगियाँ क़ुरबान की जा सकती हैं।

हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* वापस होते हुए कुछ दूर निकल आए बीवी निगाहों से ओझल हो चुकी थी। मालूम नहीं नन्ही और मासूम औलाद माँ की गोद में नाज़ो-अदा दिखा रही थी या ज़मीन के बिछौने को अपने वुजूद से रौनक़ बख़्श रही थी। क़रीब की एक पहाड़ी से हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* ने पलट कर देखा, जज़बात उबल पड़े, अल्लाह तआला से अर्ज़ किया और अल्लाह का बन्दा अल्लाह ही से अर्ज़ करता है–

"परवरदिगार! मैंने एक बंजर घाटी में अपनी औलाद के एक हिस्से को तेरे मुहतरम घर के पास ला बसाया है। परवरदिगार! यह मैंने इसलिए किया है कि ये लोग यहाँ नमाज़ क़ायम करें! लिहाज़ा तू लोगों के दिलों को उनकी तरफ़ राग़िब कर दे और उन्हें खाने को फल दे। शायद कि ये शुक्रगुज़ार बनें।" (क़ुरआन, 14 : 37)

यह दुआ, हो सकता है उस वक़्त भी की हो और ख़ाना-काबा की तामीर के बाद भी की हो, हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* ने यह क़दम ख़ुदा के हुक्म और फ़ैसले के तहत उठाया था। किसी दूसरे शख़्स को इस तरह की इजाज़त न होगी कि वह अपने बीवी-बच्चों को इस तरह बेयारो-मददगार किसी जंगल व बयाबान की नज़र कर दे और मौत के मुँह में उन्हें धकेल दे। अगर कोई ऐसा करेगा तो वह उनकी हलाकत और मौत का ज़िम्मेदार तथा सज़ा का हक़दार कहलाएगा।

हाजरा सफ़ा और मरवा के दरमियान दौड़ती हैं

हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* बीवी और बच्चे को अल्लाह के हवाले करके रवाना हो गए। हज़रत हाजरा को भूख लगती तो कुछ खजूरें खा लेतीं और जो पानी था उससे प्यास बुझातीं। हज़रत इसमाईल भूख व प्यास से रोने लगते तो उन्हें अपना दूध पिलातीं और उन्हें ज़िन्दा रखने की कोशिश करतीं। हाजरा के पास खाने-पीने की जो चीज़ें थीं वे जल्द ही ख़त्म हो गईं। दूध भी ख़ुश्क होने लगा। हज़रत इसमाईल भूख से बेताब होने लगे। माँ से यह कैफ़ियत देखी नहीं जा रही थी। तड़प उठीं। क़रीब में सफ़ा की पहाड़ी थी। ऊपर चढ़कर चारों तरफ़ नज़रें दौड़ाने लगीं कि शायद कोई इनसान नज़र आए या पानी का कोई सुराग़ लगे। वहाँ कोई चीज़ न थी, मायूस होकर उतर आईं। कुछ फ़ासले पर मरवा की पहाड़ी थी, उस पर पहुँच गईं, लेकिन वहाँ भी मायूसी ही हाथ आई। इस तरह सात बार उन पहाड़ियों के दरमियान चक्कर काटती रहीं और उसी बीच बच्चे को देखने के लिए भी पहुँच जातीं, जो बज़ाहिर मौत व ज़िन्दगी की कशमकश में मुब्तला था।

हज़रत हाजरा का अल्लाह तआला की ख़ुशी की ख़ातिर यह तकलीफ़ बर्दाश्त करना और उसके लिए इस तरह तड़पना और इस तरह दौड़ना अल्लाह को इतना पसन्द आया कि वह उसकी राह में दौड़-भाग करने की अलामत बन गया और हज व उमरा का हिस्सा क़रार पाया। एक ख़ातून का अमल हर मर्द और औरत के लिए नमूना बन गया।

इन पहाड़ियों से जुड़ी इस तारीख़ को जहालत के दौर में भुला दिया गया था और उनपर असाफ़ और नाइला नाम के दो बुत रख दिए गए थे। उनके दरमियान सई भी होती थी। इस्लाम के आने के बाद मुसलमानों के ज़ेहन में सवाल पैदा हुआ कि अब उनके दरमियान सई होनी चाहिए या नहीं? कुछ क़बीलों के बुत दूसरे थे। वे पहले भी उनके

दरमियान सई नहीं करते थे। उनके अन्दर इसके लिए आमादगी नहीं थी। क़ुरआन मजीद ने इन पहाड़ियों के साथ जो जाहिली तसव्वुरात थे, उनकी इस्लाह की। उनकी बड़ाई की इससे बड़ी दलील और क्या हो सकती हैं कि उसने उन्हें शआइरुल्लाह (अल्लाह की निशानियाँ) क़रार दिया और कहा कि ये ख़ुदा की बन्दगी और तस्लीमो-रज़ा की निशानियाँ हैं। उनकी बड़ाई और एहतिराम का तक़ाज़ा है कि हज व उमरा में उनके बीच सई की जाए। इसमें किसी क़िस्म की बुराई नहीं महसूस की जानी चाहिए। (तफ़सील के लिए देखें : बुख़ारी, मुस्लिम)

> "बेशक सफ़ा व मरवा अल्लाह की निशानियों में से हैं। लिहाज़ा जो शख़्स अल्लाह के घर का हज करे या उमरा तो उसपर कोई हरज नहीं है कि इन दोनों का तवाफ़ करे और जो कोई ख़ुशी से भलाई करे तो अल्लाह तआला क़द्र करनेवाला है और सब कुछ जानता है।" (क़ुरआन, 2 : 158)

अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने हज में ख़ाना-काबा के तवाफ़ के बाद सात बार सफ़ा और मरवा के बीच सई की। सफ़ा से सई शुरू की और मरवा पर ख़त्म की। पहले सफ़ा पर पहुँचे और ख़ाना-काबा की तरफ़ रुख़ करके 'ला इला-हा इल्लल्लाह' और 'अल्लाहु अकबर' कहा और यह दुआ पढ़ी—

> "ला इला-ह इल्लल्लाहु वह-द-हू ला शरी-क लहू, लहुल-मुल-कु व-ल-हुल-हम-दु व-हु-व अला कुल्लि शय-इन क़दिर। ला इला-ह इल्लल्ला-ह व ह-द-हु अन्‌ज-ज़ वअ्-द-हु व न-स-र अब्-द-हु व ह-ज़-मल अह्‌ज़ा-ब वह-द-हु।"
>
> (नहीं है कोई माबूद सिवाय एक अल्लाह के, उसका कोई शरीक नहीं। सल्तनत और इख़्तिदार उसी का है। हम्दो-सना उसी के लिए है और वह हर चीज़ पर क़ुदरत रखता है। उसके सिवा कोई माबूद नहीं। उसने अपना वादा पूरा किया।

अपने बन्दे की मदद की और तन्हा तमाम लश्करों को शिकस्त दी।) (हदीस : मुस्लिम)

यह दुआ आदमी एक से ज़्यादा बार भी पढ़ सकता है। इस तरह अल्लाह ने सफ़ा और मरवा को शिर्क की गन्दगियों से पाक किया और उसकी हक़ीक़ी अज़मत बहाल की। अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने अपने अमल से उसका अमली सबूत दिया। अब जो शख़्स उनके दरमियान सई करता है, तौहीद के नग़्मे उसकी ज़बान पर होते हैं।

ज़मज़म निकल आया

अब असल वाक़िए की तरफ़ आइए। हज़रत हाजरा सफ़ा और मरवा के दरमियान जब सात चक्कर लगा चुकीं तो उन्होंने एक आवाज़ सुनी। उन्हें अपने कानों पर शक हुआ। कुछ देर के बाद फिर यही आवाज़ सुनी। यह असल में फ़रिश्ते की आवाज़ थी। उसने ज़मीन की परत को कुरेदा तो पानी का चश्मा उबल पड़ा। हज़रत हाजरा घबरा गईं। फ़रिश्ते ने उन्हें इत्मीनान दिलाया, घबराओ नहीं, अल्लाह तुम्हारी हिफ़ाज़त करेगा और यह बच्चा बड़ा होकर अपने बाप के साथ यहाँ अल्लाह का घर तामीर करेगा। हज़रत हाजरा ने पानी को उबलते हुए देखा तो जल्दी से अपना मश्कीज़ा भर लिया और उसके चारों तरफ़ हौज़ बनाकर उसे रोकने की कोशिश की। अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* का इरशाद है, अगर हाजरा उस पानी को न रोकतीं तो वह चश्मा हमेशा जारी रहता।

वादी में जब पानी निकल आया तो आबादी की सूरत भी पैदा हो गई। जुरहुम क़बीला कुछ दूरी पर आबाद था। उसके कुछ लोगों ने सफ़र करते हुए कदअ के रास्ते से मक्का के निचले इलाक़े में डेरा डाला। उन्होंने एक परिन्दे को मंडलाते देखा तो कहा कि हमारी जानकारी की हद तक यहाँ पानी नहीं है, फिर यह क्यों मंडला रहा है? यह परिन्दा तो वहाँ पाया जाता है जहाँ पानी होता है। उन्होंने

दो-एक आदमियों को इसका पता लगाने के लिए भेजा तो ख़बर मिली कि घाटी में पानी मौजूद है। क़ाफ़िले के लोग वहाँ पहुँचे तो हज़रत हाजरा चश्मे के पास मौजूद थीं। उन्होंने वहाँ ठहरने की इजाज़त चाही तो हज़रत हाजरा ने कहा : हाँ, तुम ठहर सकते हो, लेकिन पानी पर तुम्हारा हक़ न होगा। उसे उन्होंने तस्लीम कर लिया। जल्द ही जुरहुम क़बीले के कुछ और लोग वहाँ आबाद हो गए। उन सबके दरमियान एक तरह का अपनापन और मुहब्बत पैदा हो गई। हज़रत इसमाईल *(अलैहि.)* ने उन्हीं के दरमियान परवरिश पाई। अरबी ज़बान बोलने लगे और उनकी शादी भी उसी क़बीले में हुई।

(हदीस : बुख़ारी, किताबुल-अंबिया

क़ुरबानी

हज़रत हाजरा और हज़रत इसमाईल *(अलैहि.)* इस बंजर और सुनसान घाटी को आबाद कर रहे थे। हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* उनके पास आते-जाते और उनकी ख़बरगीरी करते रहे। हज़रत इसमाईल *(अलैहि.)* अब चलने-फिरने और दौड़-धूप के क़ाबिल हो गए तो हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* को एक और इम्तिहान से गुज़ारा गया। यह इम्तिहान शायद पिछले इम्तिहानों से ज़्यादा सख़्त था। हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* को ख़ाब में इशारा हुआ कि अपनी इकलौती औलाद को ख़ुदा की राह में ज़बह कर दें। बाप ने बेटे से इसका ज़िक्र किया। उसका बयान क़ुरआन मजीद में इसे तरह हुआ है—

> "वह लड़का जब उसके साथ दौड़-धूप करने की उम्र को पहुँच गया तो एक रोज़ इबराहीम *(अलैहि.)* ने उससे कहा : बेटा, मैं ख़ाब में देखता हूँ कि मैं तुझे ज़बह कर रहा हूँ। अब तू बता तेरा क्या ख़याल है?" (क़ुरआन, 37 : 102)

बेटे ने फ़ौरन जवाब दिया : इसमें सोचने की क्या बात है?

"उसने कहा : अब्बा जान, जो कुछ आपको हुक्म दिया जा रहा है उसे कर डालिए। आप इंशा-अल्लाह मुझे सब्र करनेवालों में से पाएँगे।" (क़ुरआन, 37 : 102)

इसी जवाब की हज़रत इसमाईल *(अलैहि.)* से उम्मीद की जा सकती थी। इस कम उम्री में बेटे की फ़रमाँबरदारी और ख़ुदातरसी पर हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* का दिल शुक्र व इत्मीनान से लबरेज़ हो गया होगा और उसके लिए प्यार व मुहब्बत के जज़बात उमड़ आए होंगे। क्या मालूम कि आँखों में ख़ुशी के मोती तैरने लगे हों! हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* ने दुआ की थी—

"रब्बी हब ली मिनस-सालिहीन।"

(ऐ अल्लाह, मुझे सालेह (नेक) औलाद अता फ़रमा।)

(क़ुरआन, 37 : 100)

हज़रत इसमाईल *(अलैहि.)* ने कम उम्री ही में साबित कर दिखाया था कि अल्लाह ने उनकी दुआ क़बूल कर ली। वे सालेह (नेक) फ़ितरत लेकर आए हैं और ख़ुदा के हर हुक्म के आगे सर झुकाने के लिए तैयार हैं।

मासूम बच्चे की ज़बान से सब्र और जमाव के ये अलफ़ाज़ सुनने के बाद ख़ुदापरस्त बाप ने बेटे को ज़ब्ह करने का फ़ैसला कर लिया। आसमान की आँख हैरान थी कि वह क्या देख रही है? ज़मीन काँप रही थी कि उसपर क्या पेश आनेवाला है? फ़रिश्ते इनसान की बड़ाई को देख रहे थे। ख़ुदा की मख़लूक़ देख रही थी कि मिट्टी का बना हुआ इनसान ख़ुदापरस्ती का कितना ऊँचा और कितना बुलन्दो-बाला मीनार तामीर कर सकता है!

बाप और बेटे के इस वालिहाना इक़दाम और उनके जज़बए-सरफ़रोशी के बयान के लिए अलफ़ाज़ आपको ख़ुदा की किताब से लेने होंगे। इरशाद है—

"जब उन दोनों ने अपने आपको ख़ुदा के आदेश के हवाले कर दिया और इबराहीम ने बेटे को पेशानी के बल लिटा दिया.... ।" (क़ुरआन 37 : 103)

क़ुरआन मजीद ने 'अस-लमा' का लफ़्ज़ इस्तेमाल किया है, जिसके माने इस्लाम लाने के हैं। इसमें मुती-ए-फ़रमान (फ़रमाँबरदार) होने और हुक्म की तामील का तसव्वुर है। इसमें ख़ुदसुपुर्दगी, हवालगी और आत्मसमर्पण का भी मफ़हूम है। यूँ महसूस होता है जैसे बाप-बेटे सरापा इस्लाम बन गए हों। क्या इस्लाम की इससे बेहतर और कोई तफ़सीर हो सकती है?

हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* ने बेटे को चित नहीं लिटाया, बल्कि चेहरे के बल लिटाया, ताकि ज़बूह के वक़्त बेटे के चेहरे पर नज़र पड़ने से बाप के जज़बात ग़ालिब न आ जाएँ? जो क़दम बढ़ चुका है वह पीछे न हट जाए और इसमें लग़ज़िश न आ जाए। ऐसी हर बात इस्लामे-कामिल के मुनाफ़ी थी।

अभी हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* की छुरी हज़रत इसमाईल *(अलैहि.)* के गले पर नहीं चली थी कि परदए-ग़ैब से आवाज़ आई—

"ऐ इबराहीम! तूने ख़्वाब सच कर दिखाया। बेशक हम नेकी करनेवालों को ऐसा ही बदला देते हैं।"

(क़ुरआन, 37 : 104, 105)

बाप के हाथों बेटे को ज़बूह कराना मक़सद न था, यह तो महज़ ख़ुदा से ताल्लुक़ का इम्तिहान था। हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* ने साबित कर दिया कि ख़ुदा की मुहब्बत, औलाद की मुहब्बत पर ग़ालिब है और इस मुहब्बत में कोई दूसरा शरीक नहीं है। वे इस मुहब्बत में बड़े से बड़ा क़दम उठा सकते हैं। हुक्म हुआ कि इस इम्तिहान में तुम कामयाब हो गए। इसी जज़बे के साथ एक बकरा ज़बूह कर दो—

"और हमने एक बड़ी क़ुरबानी फ़िदया में देकर उस बच्चे को छुड़ा लिया।" (क़ुरआन, 37 : 107)

इनसानी खाने में जानवरों का गोश्त हमेशा शामिल रहा है और इसके लिए जानवर ज़बूह होते रहते हैं, लेकिन इस जज़बे ने उसे एक पाकीज़ा रुख़ दे दिया है। इस तरह जानवर का ज़बूह करना सिर्फ़ ज़रूरत की तकमील नहीं, बल्कि ख़ुदा की राह में हर चीज़ क़ुरबान कर देने की अलामत बन गया। कुछ बुज़ुर्गों का ख़याल है कि यह बकरा जन्नत से आया था और कुछ ने कहा है कि यह कोहे-शब्बीर से उतरा और हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* ने उसे फ़िदया के तौर पर ज़बूह किया (क़ुरतबी, अह्कामुल-क़ुरआन, जिल्द 15, पेज 107) बहरहाल, हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* ने जिस पाकीज़ा जज़बे के साथ जानवर की क़ुरबानी की, वह एक दाइमी (हमेशा की) सुन्नत बन-गई और कुछ मौक़े पर यह अमल ज़रूरी क़रार पाया और क़ुरबानी में यही जज़बा मतलूब है वरना ख़ुदा को गोश्त-पोस्त की हाजत नहीं—

> "न क़ुरबानियों के गोश्त; अल्लाह को पहुँचते हैं, न ख़ून; मगर उसे तुम्हारा तक़वा (ईशपरायणता) पहुँचता है।"
>
> (क़ुरआन, 22 : 37)

देवी-देवताओं के नाम पर इनसानी जान के नज़राने पेश होते रहे हैं, यह कोई निराली बात नहीं है। इसकी मिसालें आज भी मिल जाती हैं। ये नज़राने ज़ाती फ़ायदों और मामूली मक़ासिद के लिए दिए जाते हैं। इनके पीछे कोई बुलन्द मक़सद नहीं होता। हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* के इस वाक़िए ने बता दिया कि किसी छोटे मक़सद ही के लिए नहीं, बल्कि अल्लाह तआला की ख़ुशी के लिए भी इनसानों की क़ुरबानी नाजाइज़ है। यह आदमियत के एहतिराम के मुनाफ़ी है। हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* की इस सुन्नत का इनसानों पर बहुत बड़ा एहसान है।

रमी जिमार

हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* बेटे को ज़बूह करने के इरादे से निकले तो तफ़सीरी रिवायतों में आता है कि शैतान, हज़रत इसमाईल *(अलैहि.)* की

माँ के पास पहुँचा और कहा कि तुम्हें कुछ पता भी है कि इबराहीम तुम्हारे लड़के को कहाँ ले जा रहे हैं? उन्होंने जवाब दिया कि मुझे नहीं मालूम। कहा कि वे उन्हें ज़बूह करने के लिए ले जा रहे हैं। उन्होंने कहा कि इस हरकत की इबराहीम जैसे शफ़ीक़ बाप से उम्मीद नहीं की जा सकती। उसने कहा कि उनका ख़याल है कि उनके रब ने उन्हें इसका हुक्म दिया है। हज़रत इसमाईल की माँ ने जवाब दिया कि अगर यह उनके रब का हुक्म है तो उन्हें इसपर अमल करना ही चाहिए। फिर वह हज़रत इसमाईल के पास आया और यही बात दोहराई, तो उन्होंने भी यह जवाब दिया कि अल्लाह का हुक्म है तो उसपर अमल क्यों न हो? मैं इसके लिए आमादा हूँ। आख़िर में वह हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* के पास आया और कहा कि आपके ख़्वाब में शैतान आया था और उसने आपको अपनी औलाद को ज़बूह करने का हुक्म दिया है। इसपर आप अमल न करें। हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* समझ गए कि शैतान नसीहत का लिबास पहनकर उनके पास आया है। उन्होंने उसे धुतकार दिया। हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास *(रज़ि.)* फ़रमाते हैं कि वह पहले जमर-ए-उक़्बा (पहले जमर) के पास आया तो हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* ने सात कंकरियाँ मारकर उसे भगाया। फिर वह जमर-ए-वुसता (बीचवाले जमर) के पास पहुँचा, वहाँ भी आपने उसे सात कंकरियाँ मारीं, फिर जमर-ए-उख़रा (आख़िरी जमर) के पास पहुँचा और वहाँ यही बात कही और हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* ने सात कंकरियाँ मारकर उसे भाग दिया और फिर अल्लाह के हुक्म को पूरा करने के लिए आगे बढ़े। मिना में ज़बूह का वाक़िआ पेश आया। यह सुन्नत भी हमेशा के लिए जारी हो गई और हज का ज़रूरी हिस्सा क़रार पाई।

रमी जिमार के सिलसिले में कुछ और बातें भी कही गई हैं। (इब्ने-कसीर, तफ़सीर 4/14-15; क़ुरतबी, अह्कामुल–क़ुरआन : 15/105-106)

ख़ाना-काबा की तामीर

कुछ रिवायतों से मालूम होता है कि ख़ाना-काबा की तामीर फ़रिश्तों ने की थी। कुछ दूसरी रिवायतें बताती हैं कि हज़रत आदम *(अलैहि.)* के हाथों उसकी तामीर हुई थी और आदम की औलाद के लिए यही इबादत का मरकज़ (केन्द्र) था। तूफ़ाने-नूह में यह भी पानी में डूब गया और इसके निशानात तक मिट गए। बाद में अल्लाह तआला ने हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* को उसकी निशानदेही फ़रमाई और नए सिरे से उसकी तामीर हुई। (क़ुरतबी, अह्कामुल-क़ुरआन : 2/120-122)

इन रिवायतों के सही होने में शक है, इसलिए इनपर भरोसा नहीं किया जा सकता। लेकिन यह एक तारीख़ी हक़ीक़त है और क़ुरआन मजीद ने इसकी गवाही दी है कि इस घर की तामीर हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* के हाथों हुई, जिस ख़ुलूस और पाकीज़ा जज़बे के तहत हुई उसका ज़िक्र कोई क्या कर सके!

क़ुरआन ने उसका ज़िक्र इस तरह किया है—

> "और याद करो इबराहीम और इसमाईल जब इस घर की दीवारें उठा रहे थे, तो दुआ करते जाते थे : ऐ हमारे रब! हमसे यह ख़िदमत क़बूल फ़रमा ले। तू सबकी सुनने और सब कुछ जाननेवाला है। ऐ रब! हम दोनों को अपना मुस्लिम (फ़रमाँबरदार बन्दा) बना। हमारी नस्ल से एक ऐसी क़ौम उठा, जो तेरी मुस्लिम हो। हमें अपनी इबादत के तरीक़े बता और हमारी कोताहियों से दरगुज़र कर, तू बड़ा माफ़ करनेवाला और रहम फ़रमानेवाला है।"
>
> (क़ुरआन, 2 : 127-128)

ग़ौर कीजिए, किसी माद्दी (भौतिक) चीज़ की ख़ाहिश नहीं, कोई ज़ाती ग़रज़ नहीं, दुनिया की दौलत की तलब नहीं, राहत और ऐशो-आराम की ख़ाहिश नहीं, शोहरत और नामवरी की आरज़ू नहीं, बल्कि दुआ है और ख़ुलूस व सच्चे दिल के साथ दुआ है कि ऐ ख़ुदा! तेरा घर

तामीर हो रहा है, इस ख़िदमत को क़बूल फ़रमा। हम दोनों को इस्लाम की दौलत से नवाज़ दे और इसपर साबित क़दम रहने की तौफ़ीक़ दे। हमारी नस्ल से तू अपनी फ़रमाँबरदार उम्मत बरपा कर दे, हमें अपनी इबादत के तरीक़े और मनासिके-हज (हज में किए जानेवाले कर्म) सिखा दे।

तुझसे यह भी दुआ है—

> "ऐ हमारे रब! उन लोगों में ख़ुद उन्हीं की क़ौम से एक रसूल उठाइयो, जो उन्हें तेरी आयतें सुनाए। उनको किताब और हिकमत की तालीम दे और उनकी ज़िन्दगियाँ सँवारे, तू बड़ा ज़बरदस्त और हिकमतवाला है।" (क़ुरआन, 2 : 129)

हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* देख रहे थे कि उनकी नस्ल फैलेगी। यह बस्ती आबाद होगी और उसे हिदायत, रहनुमाई (मार्गदर्शन) की भी ज़रूरत होगी। इसके लिए दुआ थी एक ऐसे पैग़म्बर और ऐसे रहनुमा की जो उनकी नस्ल को ख़ुदा की किताब सुनाए, जो उसे फ़िक्रो-अमल की गन्दगियों से पाक-साफ़ करे और उसे किताबो-हिकमत की तालीम दे और दीन की क़ीमती बातें उसपर खोले। अपनी नस्ल और अपनी औलाद के लिए इससे बेहतर और क्या दुआ हो सकती है? वह सीना किन जज़बात से भरा हुआ होगा, जिसके मुख से ये दुआएँ, अलफ़ाज़ बनकर निकल रही थीं। यह बेग़र्ज़ी, बेलौसी; इख़लास व लिल्लाहिय्यत (निष्ठा और ईशपरायणता) पैग़म्बरों ही के यहाँ देखी जा सकती है। वही इस मामले में दुनिया के लिए नमूना होते हैं। हरमे-पाक को जो बड़ाई नसीब हुई, दिल कहता है और पूरे ज़ोर से कहता है कि इसमें हज़रत इबराहीम और हज़रत इसमाईल *(अलैहि.)* का यही ख़ुलूस और लिल्लाहियत कारफ़रमा रही है।

हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* ने जिस पैग़म्बर की दुआ की थी, अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद *(सल्ल.)* की मुहतरम ज़ात उसपर पूरे तौर पर पूरी उतर रही थी। आप *(सल्ल.)* के ज़रीए से उनके मक़ासिद की

तकमील हुई, जिनकी दुआ हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* ने की थी और इस तरह हुई कि अब सारे ही इनसानों की फ़लाह और कामरानी के लिए किसी और हिदायत, किसी और रहनुमाई की क़ियामत तक ज़रूरत नहीं रही।

अल्लाह ने वह मक़सद वाज़ेह कर दिया था जिसके लिए ख़ाना-काबा की तामीर का हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* को हुक्म हुआ—

> "याद करो वह वक़्त जबकि हमने इबराहीम के लिए उस घर (ख़ाना-काबा) की जगह तय की थी (इस हिदायत के साथ) कि मेरे साथ किसी चीज़ को शरीक न करो और मेरे घर को तवाफ़ करनेवालों और क़ियाम व रुकूअ और सजदा करनेवालों के लिए पाक-साफ़ रखो।" (क़ुरआन, 22 : 26)

> "और हमने इबराहीम और इसमाईल को ताकीद की थी कि मेरे इस घर को तवाफ़ और एतिकाफ़ और रुकूअ और सजदा करनेवालों के लिए पाक रखो।" (क़ुरआन, 2 : 125)

यह हिदायत थी और एलान था कि यह घर तौहीद का मरकज़ होगा, यहाँ सिर्फ़ एक ख़ुदा की इबादत होगी, इसे ज़ाहिरी गन्दगी से पाक रखा जाएगा। लोग इसका तवाफ़ करने के लिए आएँगे, इसमें रुकूअ व सजदा होगा और नमाज़ें पढ़ी जाएँगी।

हजरे-असवद

ख़ाना-काबा का तवाफ़ करना और उसके गिर्द चक्कर काटना इबादत है। उसकी बुनियादें जब एक हद तक बुलन्द हो चुकीं तो हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* ने हज़रत इसमाईल *(अलैहि.)* से कहा कि कोई ऐसा ख़ूबसूरत और नुमायाँ पत्थर ढूँढ लाओ कि उसे दीवार में लगा दिया जाए, ताकि वह तवाफ़ करनेवालों के लिए अलामत के तौर पर इस्तेमाल हो सके। वे यहाँ से तवाफ़ शुरू करें और यहीं ख़त्म करें। हज़रत इसमाईल *(अलैहि.)* पत्थर ढूँढ लाए, लेकिन हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)*

को पसन्द न आया। वे दूसरे पत्थर की तलाश में गए कि जिबरील *(अलैहि.)* ने हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* को मुनासिब पत्थर की निशानदेही की। यही हजरे-असवद (काला पत्थर) है और वह दीवार में लगा दिया गया। उसे चूमना सुन्नत है और ऐसा करने से सवाब मिलता है।

(क़ुरतबी, अह्कामुल-क़ुरआन : 2/132)

मक़ामे-इबराहीम

हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* काबा की बुनियादें उठा रहे थे। हज़रत इसमाईल *(अलैहि.)* उन्हें पत्थर ला-लाकर देते थे। जब बुनियाद कुछ बुलन्द हो गई और हाथ वहाँ तक पहुँचना मुश्किल हो गया तो हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* एक पत्थर पर खड़े होकर उसे बुलन्द करने लगे। उसी को मक़ामे-इबराहीम कहा जाता है। यह शायद कच्चा पत्थर था, उसपर हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* के क़दम के निशान पड़ गए। लोगों के लगातार हाथ लगाने और छूते रहने की वजह से वे धुंधले होते चले गए। एक वक़्त आया कि वे निशान मिट गए। यह पत्थर ख़ाना-काबा की बुनियाद से लगा हुआ था। शायद जहाँ तामीर का काम ख़त्म हुआ, हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* ने उसे वहीं छोड़ दिया। हज़रत उमर *(रज़ि.)* ने जब देखा कि उसकी वजह से तवाफ़ में परेशानी हो रही है तो उसे थोड़ा-सा पीछे हटा दिया। सहाबा व ताबईन में से किसी ने इसपर टोका नहीं। इस तरह अमलन इससे इत्तिफ़ाक़ कर लिया गया।

एक कमज़ोर-सी रिवायत यह है भी है कि उस पत्थर पर हज़रत इसमाईल *(अलैहि.)* की बीवी ने हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* का सर धुलाया था और उसपर हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* के खड़े होने के निशान थे। इस रिवायत से यहाँ बहस नहीं है। क़ुरआन मजीद से हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* की तरफ़ उसकी निस्बत साबित है और यही उसके एहतिराम व आदर के लिए काफ़ी है। क़ुरआन मजीद ने कहा—

"और तुम मक़ामे-इबराहीम को नमाज़ अदा करने की जगह बना लो।" (क़ुरआन, 2 : 125)

तवाफ़े-क़ुदूम के बाद उस जगह दो रकअत नमाज़ पढ़ना सुन्नत है। अलबत्ता उसे छूना या उसको चूमना साबित नहीं।

(क़ुरतबी, अह्कामुल-क़ुरआन : 2/112-13; इब्ने-कसीर, तफ़सीर : 1/169-171; इब्ने-हजर, फ़तहुल-बारी : 8/169)

हज का एलान

जब ख़ाना-काबा की तामीर हो गई तो हुक्म हुआ—

"और लोगों में हज के लिए आम एलान कर दो कि वे तुम्हारे पास दूर-दराज़ मक़ाम से पैदल और ऊँटों पर सवार आएँ, ताकि वे फ़ायदे देखें जो यहाँ उनके लिए रखे गए हैं और कुछ मुक़र्रर दिनों में उन जानवरों पर अल्लाह का नाम लें जो उसने उन्हें बख़्शे हैं; ख़ुद भी खायें और तंगदस्त मुहताज को भी दें। फिर अपना मैल-कुचैल दूर करें और अपनी नज़रें (मन्नतें) पूरी करें और इस क़दीम घर का तवाफ़ करें।"

(क़ुरआन, 22 : 27-29)

यह क़ियामत तक के लिए एलान था कि लोग इस घर की ज़ियारत के लिए हर तरफ़ से आएँ और इसका तवाफ़ करें। यहाँ क़ुरबानी दें और अपनी नज़रें (मन्नतें) पूरी करें। आज तक यह एलान बाक़ी है और दुनिया के हर गोशे और हिस्से से ख़ुदा के बन्दे इस घर की तरफ़ खिंचे चले आ रहे हैं और जब तक रात-दिन का उलट-फेर बाक़ी है यह सिलसिला इंशा-अल्लाह जारी रहेगा।

यह है हज की मुख़्तसर तारीख़। इस तारीख़ को अल्लाह तआला ने हमेशा के लिए महफ़ूज़ कर दिया है। यह तारीख़ आज भी बोलती है। जहाँ यह तारीख़ वुजूद में आई, उन मक़ामात पर पहुँचकर उसकी

आवाज़ सुनी जा सकती है। उन मक़ामात के मुशाहदे से आँखों को रौशनी और ईमान को ताज़गी मिलती है। यह कितनी ख़ुशक़िस्मती की बात है कि आदमी उन कामों को पूरा करने की कोशिश करे, जो हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)*, हज़रत इसमाईल *(अलैहि.)* और हज़रत हाजरा ने अंजाम दिए थे। आदमी के दिल पर वह कैफ़ियत छा जाए जो उन मौक़ों पर छा जाती है या फ़ितरी तौर पर छा जानी चाहिए। यही है हज का मतलब और फ़ायदा।

"बेशक सबसे पहली इबादतगाह, जो इनसानों के लिए तामीर हुई वह वही है जो मक्का में है। इसमें ख़ैर व बरकत दी गई थी और तमाम जहानवालों के लिए मरकज़े-हिदायत बनाया गया था। उसमें खुली निशानियाँ हैं। मक़ामे-इबराहीम (इबराहीम के खड़े होने की जगह) है और उसका हाल यह है कि जो उसमें दाख़िल हुआ, बेफ़िक्र हो गया। लोगों पर अल्लाह का यह हक़ है कि जो कोई उस घर तक पहुँचने की सकत रखता हो, वह उसका हज करे और जो कोई हुक्म की पैरवी से इनकार करे तो उसे मालूम होना चाहिए कि अल्लाह तमाम दुनियावालों से बेनियाज़ है।" (क़ुरआन, 3 : 96, 97)

हज के सफ़र की रूदाद

हज के सफ़र की रूदाद (रिपोर्ट) से पहले हज का ज़िक्र छिड़ गया—

अब इस मुक़द्दस फ़र्ज़ की अदायगी में हमारा हाल भी सुनिए—

हमारा सफ़र इंटरनेशनल पासपोर्ट के तहत था। इस सिलसिले में मुझे किसी क़िस्म की दौड़-धूप नहीं करनी पड़ी। सारी कार्यवाही भाई मुहतरम एजाज़ अहमद असलम साहब और जनाब तारिक़ इकरामुल्लाह साहब ने अंजाम दी। इन्हें अल्लाह जज़ा-ए-ख़ैर से नवाज़े।

21 मार्च, 1997 ई॰ को हम दोनों अलीगढ़ से दिल्ली रवाना हुए। बच्चे भी रुख़सत करने के लिए साथ हो गए। बड़ा लड़का सैयद सफ़ी

अतहर इसी मक़सद से मुम्बई आया हुआ था। 25 मार्च की शाम 6:30 बजे सऊदी एयरलाइंस से रवानगी थी। दोस्तों और रफ़ीक़ों की दुआओं की सौग़ात लेकर रवाना हुए। डॉ॰ मुहम्मद रफ़अत (दामाद), दोनों बच्चों और दोनों बच्चियों ने रुखसत किया। जैसे ही एयरपोर्ट पर पहुँचे और सफ़र के सिलसिले की जानकारी लेने लगे, एक नौजवान से मुलाक़ात हुई जिनका ताल्लुक़ बिहार (राज्य) से था और जो सऊदिया में मुलाज़िम थे। उन्होंने सामान की चेकिंग से लेकर बोर्डिंग कार्ड हासिल करने तक, बल्कि जहाज़ में सवार होने तक साथ दिया। वे ख़ुद भी उसी जहाज़ से सफ़र कर रहे थे, अल्लाह जज़ा-ए-ख़ैर दे, अफ़सोस कि मैं उनका नाम भूल गया।

हमने हज्जे-तमत्तो की नीयत की थी। हज्जे-तमत्तो में आदमी हज के महीनों में उमरा की नीयत करता है। उमरा से फ़ारिग़ होने के बाद एहराम की पाबन्दियाँ उसपर से ख़त्म हो जाती हैं। फिर हज के दिनों में दोबारा एहराम बाँध कर हज करता है। हज्जे-तमत्तो करनेवाले के लिए क़ुरबानी वाजिब है।[2] (क़ुरआन, 2 : 196)

हज्जे-क़िरान और हज्जे-तमत्तो में क़ुरबानी वाजिब है। हज्जे-तमत्तो में सहूलियत व आसानी है। इसलिए ज़्यादातर इसी पर अमल होता है।

---

[2] हज की दो और क़िस्में हैं— हज्जे-इफ़राद और हज्जे-क़िरान। हज्जे-इफ़राद यह है कि मीक़ात से एहराम बाँधते वक़्त सिर्फ़ हज की नीयत की जाए और हज के मरासिम अदा किए जाएँ, उसके साथ उमरा की नीयत हो, जो शख़्स हज्जे-इफ़राद करे, उसपर क़ुरबानी वाजिब नहीं है।
हज्जे-क़िरान यह है कि मीक़ात से एहराम इस नीयत से बाँधा जाए कि हज और उमरा एक साथ अदा किए जाएँगे। पहले उमरा अदा किया जाए। उससे पूरी तरह फ़ारिग़ होने के बाद आदमी हालते-एहराम ही में रहे और हज अदा करके एहराम खोले। बालों का हल्क़ या क़स्र (मुँडवाना या कटवाना) उमरा के बाद न कराएँ। मनासिके-हज के साथ कराएँ।

हज का सफ़र शुरू होते ही दिल्ली एयरपोर्ट पर मैंने दो रकअत नफ़्ल नमाज़ पढ़ी और उमरा की नीयत से एहराम बाँध लिया। अह्लिया (पत्नी) ने भी नफ़्ल पढ़ी और उमरा की नीयत की (औरतों के लिए एहराम का मख़सूस लिबास नहीं है। वे अपने आम कपड़ों में एहराम की नीयत कर सकती हैं।) सऊदिया का जहाज़ ज़हरान होता हुआ जिद्दा पहुँचा। इस वजह से सफ़र में छः घंटे से कुछ ज़्यादा ही वक़्त लग गया। दिल्ली से फ़्लाइट सीधे चार घंटों में जिद्दा पहुँच जाती है। जिद्दा हम लोग पहुँचे तो सऊदी अरब के हिसाब से 11:30 बजे और हिन्दुस्तान के हिसाब से दो बजे थे। मग़रिब और इशा की नमाज़ें काफ़ी ताख़ीर से एयरपोर्ट पर अदा कीं। इसके बाद ज़ाबिते की तूल-तवील और थका देनेवाली लंबी-चौड़ी कार्यवाही शुरू हुई। इसका मुझे पहला तजुर्बा था (इससे पहले हज के मौक़े पर एक अरब दोस्त और मारूफ़ व मशहूर शख़्सियत की मेहरबानी से ज़ाबिते की कार्यवाइयों से बचा रहा)। इस कार्यवाई को और तेज़ किया जा सकता है और ज़हमतों व परेशानियों से बचा जा सकता है। मालूम हुआ कि हाजियों के जो मख़सूस जहाज़ होते हैं उनसे निपटने में और भी कई घंटे ज़्यादा लग जाते हैं। हिन्दुस्तान से जो हाजी आए थे, उनमें से चार अफ़राद सबसे पहले चार बजे के क़रीब मक्का मुकर्रमा रवाना हुए। उनमें ख़ुशक़िस्मती से हम दोनों मियाँ-बीबी भी थे। बाक़ी दो हाजियों का ताल्लुक़ पाकिस्तान से था। रास्ते में नमाज़े-फ़ज्र अदा की। मक्का मुकर्रमा में मुअल्लिम के ऑफ़िस पहुँचे तो सात बज चुके थे। मुअल्लिम के पास पासपोर्ट जमा हो जाते हैं। उनकी जगह एक कार्ड मिलता है, जो हज से वापसी तक पासपोर्ट का बदल होता है। मिना और अरफ़ात के क़ियाम के लिए भी अलग से कार्ड मिलता है। हाथ में डालने के लिए प्लास्टिक का एक पट्टा होता है, जिसमें मुअल्लिम का नाम और पता लिखा होता है। हमारे मुअल्लिम का नाम मुहम्मद इसमाईल अल-मूज़न था।

सऊदी अरब के रफ़ीक़ों और दोस्तों ने यह पहले ही से तय किया था कि हमारा क़ियाम उन्हीं के साथ रहेगा और उन्हीं के साथ हज होगा। इसलिए मुअल्लिम के ऑफ़िस से मैंने भाई जनाब मुहम्मद इसमाईल साहब को फ़ोन किया तो थोड़ी ही देर में वे और उनकी अह्लिया (बीवी) पहुँच गए। साथ में भाई रियाज़ साहब भी तशरीफ़ ले आए। वे हम दोनों को डॉक्टर मुहम्मद आसिफ़ अली साहब के मकान ले गए। डॉक्टर साहब और उनकी अह्लिया, डॉक्टर रफ़ीआ साहिबा, मुस्तशफ़ी अलविलादता (ज़च्चा-बच्चा अस्पताल) जरवल में सर्विस में हैं मकान उसी के क़रीब है। दोनों का ताल्लुक़ हैदराबाद से है।

उमरा की अदायगी

हम लोगों को अब उमरा करना था। हमारे दोस्त मुहतरम जनाब सदाक़त अली साहब तयशुदा प्रोग्राम के तहत अस्र से पहले तशरीफ़ ले आए। अस्र की नमाज़ हरम शरीफ़ में अदा की। हरम का पूरा माहौल तहारत व पाकीज़गी का माहौल है। महसूस होता है, जैसे चारों तरफ़ तक़द्दुस और पाकीज़गी का घेरा मौजूद है और हर तरफ़ नेकी की फ़ज़ा छाई हुई है। जी चाहता है कि हरम शरीफ़ को देखिए और देखते ही रहिए। यहाँ हर पल रहमतों की बारिश होती है। हर शख़्स अपनी ज़र्फ़ के मुताबिक़ फ़ैज़याब हो सकता है।

अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* काबा को देखते तो फ़रमाते, ''अल्लाहुम-म ज़िद हाज़ल-बै-त तशरीफ़न व तअ्-ज़ीमा'' (ऐ अल्लाह, इस घर की अज़मत और क़द्रो-मंज़िलत में इज़ाफ़ा फ़रमा)। यह मसनून दुआ इस घर की अज़मत का एहसास दिलाती है। इसे भूलना नहीं चाहिए।

अस्र की नमाज़ के बाद हम दोनों ने तवाफ़ किया। सदाक़त अली साहब भी तवाफ़ में साथ रहे। काबतुल्लाह को देखते ही दिल बेचैन हो जाता है। जब यह ख़याल आता है कि यह ख़ुदा का वही घर है, जिसकी तरफ़ रुख़ करके ज़िन्दगी भर नमाज़ पढ़ी और जब तक यह

बे-भरोसा और कुछ दिनों की ज़िन्दगी बाक़ी है, इंशा-अल्लाह पढ़ते रहेंगे तो बेइख़्तियार जी चाहता है कि उसके दरो-दीवार से चिमट जाएँ। जिस घर को यह मक़ाम हासिल हो कि वह दुनिया के सारे मुसलमानों का क़िब्ला हो, इबादत में जिसकी तरफ़ रुख़ करना ज़रूरी हो और उससे रुख़ फिर जाए तो नमाज़, नमाज़ न रहे। उसकी अज़मत को किन अलफ़ाज़ में और किस तरह बयान किया जा सकता है? इन्हीं एहसासों के साथ ख़ाना-काबा को देखता और कभी अपनी ख़ुशबख़्ती पर ख़ुशी से झूम उठता और कभी निगाहें ख़ुद-ब-ख़ुद झुक जातीं कि इन गुनाहगार आँखों से ख़ुदा के इस मुक़द्दस घर को कैसे देखा जाए? इसके लिए तो तहारत व पाकी में डूबी हुई और तौबा व इस्तिग़फ़ार से धुली हुई आँखें चाहिएँ। काश! वे आँखें मिलतीं, जो उसके शायाने-शान होतीं।

थोड़ी देर ग़िलाफ़े-काबा को देखा और देखता रहा। पहले भी कई बार देखा था। यूँ महसूस हुआ जैसे इस काले परदे से नूर की किरणें फूट रही हों और पूरा माहौल रौशन और ताबाँ हो रहा हो। ख़याल हुआ क्या इसमें जज़बातियत का दख़ल है या मैं ख़ास क़िस्म की मज़हबी नफ़सियात का शिकार हूँ? जल्द ही यह ख़याल मिट गया। इसलिए कि यह एक हक़ीक़त है कि यह हिदायत का मरकज़ है। यह बुक़अए-नूर है। यहीं से नूरे-हिदायत फैला और आम हुआ। मक्का शरीफ़ की सरज़मीन से जो आफ़ताब तुलू हुआ, उससे सारी दुनिया चमक उठी। अगर उससे नूर निकलता हुआ महसूस हो तो कोई ताज्जुब की बात नहीं।

ख़ाना-काबा का तवाफ़ हज और उमरा का हिस्सा और एक बड़ी इबादत है। तवाफ़ करते हुए इनसान अजीब कैफ़ियतों से सरशार होता है। जब वह अपनी तमन्नाएँ और मुरादें लेकर बे-सरो-सामानी के लिबास में ख़ुदा के घर का तवाफ़ करता और उसके गिर्द चक्कर काटता है तो ख़ुदा तआला का जज़बए-करम भी जोश में आ जाता

होगा। मैं भी अपनी बीवी के साथ उस घर का तवाफ़ कर रहा था। दिल से आवाज़ बुलन्द हुई : ऐ अल्लाह! यह फ़क़ीर तेरी नवाज़िश का तालिब है। तू इसका दामन भर दे। यह तेरे दर से ख़ाली हाथ न जाए।

हम लोगों ने अस्र के बाद तवाफ़ किया और तवाफ़ के बाद सई की। इतने में इशा का वक़्त हो गया। इशा से फ़ारिग़ होने के बाद बालों का क़स्र (छोटा) कराया और देर गए डॉ॰ मुहम्मद आसिफ़ साहब के मकान पहुँचे, जो हमारी क़ियामगाह थी।

जब तक मक्का मुकर्रमा में क़ियाम रहा, पीने के लिए ज़मज़म का इस्तेमाल ख़ूब रहा। ज़मज़म को ख़ूब जी भरकर पीने का हुक्म है। एक रिवायत में आता है कि "ज़मज़म जिस मक़सद के लिए पिया जाए, वह पूरा होगा।" (इब्ने-माजा) एक और हदीस में आता है कि "ज़मज़म, भूख और प्यास दोनों में काम आता है।" अल्लाह के बहुत-से बन्दों का तजुर्बा इसकी ताईद करता है। अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने ज़मज़म खड़े होकर पिया था। इसलिए खड़े होकर पीना सुन्नत है। उस वक़्त यह दुआ पढ़नी चाहिए–

> "अल्लाहुम-म इन्नी असअलु-क इलमन नाफ़िअँव व रिज़क़ँव वासिअँव व शिफ़ाअम मिन कुल्लि दाइन।"
>
> (ऐ अल्लाह, मैं तुझसे नफ़ा देनेवाला इल्म, रिज़्क़ की कुशादगी और हर बीमारी से सेहत व शिफ़ा चाहता हूँ।)

हरम शरीफ़ में हर तरफ़ ज़मज़म के पीपे मौजूद रहते हैं। उससे फ़ायदा उठाने में कोई कठिनाई नहीं पेश आती। बाहर नल लगे हुए हैं। यहाँ से ज़मज़म ले जाया भी जा सकता है। बहुत-से लोग इससे वुज़ू करते और मुँह-हाथ धोते हैं।

29 मार्च, 1997 ई॰ को अस्र के बाद हम दोनों जनाब रियाज़ अहमद सिद्दीक़ी साहब के साथ मक़ामाते-मुक़द्दसा (पवित्र स्थलों) की ज़ियारत के लिए निकले। इन मक़ामात की मैं पहले भी ज़ियारत कर

चुका था, लेकिन मेरी बीवी के लिए यह पहला मौक़ा था। हज से पहले इन मक़ामात को देख लेना मुफ़ीद होता है। हज के दिनों में भीड़ बढ़ जाने और हज की मसरूफ़ियत की वजह से उनके बारे में पूरी मालूमात नहीं हो पातीं। रियाज़ साहब एक लम्बी मुद्दत से मक्का मुकर्रमा में मुक़ीम हैं। उनकी मालूमात भी बहुत ज़्यादा हैं। उन्होंने उन मक़ामात के कुछ नक़्शे भी मुरत्तब किए थे। उनकी मालूमात से फ़ायदा पहुँचा और बहुत-सी यादें ताज़ा हो गईं। फ़तूहे-मक्का के वक़्त अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* जिस रास्ते से मक्का में दाख़िल हुए, उससे हमारी गाड़ी गुज़री। शेबे-अबी-तालिब को अच्छी तरह देखने का मौक़ा मिला। उसके साथ इस्लाम के शुरुआती दौर की तारीख़ जुड़ी हुई है, जो बताती है कि दावते-हक़ की राह किन काँटेदार वादियों से गुज़रती है। शेबे-अबी-तालिब अब अपनी असल शक्ल में नहीं है। उसे काटकर लम्बी-चौड़ी सड़कें निकाल दी गई हैं। उसे अब शेबे-अली कहा जाता है। वादी-ए-बैते-उक़्बा देखी। जिस बैत ने इस्लाम की दावत को एक नया रुख़ दिया और जिसने फ़तूह और कामरानी का दरवाज़ा खोल दिया। मिना पहुँचे, मस्जिदे-ख़ैफ़ देखी, जिसका एक हिस्सा हुदूदे-हरम के अन्दर और एक हिस्सा हुदूदे-हरम से बाहर है। नहरे-ज़ुबैदा के निशानात देखे। यह टूट-फूट गई है और इस्तेमाल में नहीं है। लेकिन उसमें इंजीनियरिंग का कमाल यह है कि इतनी लम्बी नहर, ऊँचे-नीचे रास्ते से और पहाड़ों के दरमियान से गुज़रती थी। लेकिन उसकी सतह हमवार (समतल) थी। कहीं फ़र्क़ नहीं आने पाया था, वरना ज़ाहिर है पानी पहुँच नहीं सकता था। मैदाने-अरफ़ात पहुँचे। जबले-रहमत गए, जहाँ से आप *(सल्ल.)* ने हिज्जतुल-विदाअ का तारीख़ी ख़ुत्बा व दिया था। इनसानी हुक़ूक़ की हिफ़ाज़त, तमाम इनसानों की हमदर्दी और कमज़ोरों की भलाई में उस जैसा ख़ुत्बा इतिहास में कभी नहीं सुना गया। रास्ते में मग़रिब का वक़्त हो गया। सड़क के किनारे कुछ और लोगों के साथ मग़रिब की नमाज़ अदा की और सीधे हरम शरीफ़ पहुँच गए। देर तक

ख़ुदा के घर में बैठे रहे। नमाज़े-इशा हरम शरीफ़ में पढ़ी। इसके बाद रियाज़ साहब ने हमें अपने मकान पर पहुँचा दिया।

मुहतरम सैयद सदाक़त अली साहब नमाज़े-फ़ज्र से पहले डॉ० आसिफ़ अली साहब के यहाँ पहुँच जाते और डॉक्टर साहब के यहाँ यह एहतिमाम था कि नमाज़ से पहले ही हम दोनों के लिए और हमारे साथ सदाक़त साहब के लिए भी चाय तैयार मिलती। चाय से फ़ारिग़ होने के बाद वे हम दोनों को अपनी गाड़ी से हरम शरीफ़ पहुँचा दिया करते। नमाज़े-फ़ज्र के बाद जब तक जी चाहता, हम दोनों हरम में क़ियाम करते और कोशिश यह होती कि हर रोज़ तवाफ़ की सआदत भी हासिल हो। फिर कोई न कोई दोस्त आते और हमें डॉक्टर साहब के यहाँ पहुँचा देते। डॉक्टर साहब का घर हरम शरीफ़ से क़रीब था। दस मिनट में सवारी उनके घर पहुँच जाती।

31 मार्च (21 ज़ी-क़ादा) को हम डॉक्टर साहब के घर पहुँचकर नाश्ते से फ़ारिग़ हुए ही थे कि हुसैन ज़ुलक़रनैन साहब तशरीफ़ ले आए। दावत व तब्लीग़ के मौज़ूअ (विषय) पर उनसे बातें होती रहीं। लन्दन में इस मक़सद के लिए सेंटर क़ायम है, उससे वे मुताल्लिक़ हैं। अस्र के बाद सदाक़त साहब के साथ हम दोनों हरम शरीफ़ पहुँचे। हम दोनों के साथ सदाक़त साहब ने भी तवाफ़ किया। नमाज़े-मग़रिब के बाद वापसी हुई।

मदीना मुनव्वरा रवानगी

आज मदीना मुनव्वरा रवानगी है। इशा के बाद का वक़्त तय हुआ। लेकिन क़ानून की लम्बी-चौड़ी (और बज़ाहिर ग़ैर-ज़रूरी) कार्रवाइयों के नतीजे में रात के बारह बजे बस रवाना हुई। सदाक़त साहब और तमीज़ुद्दीन साहब अपनी अह्लिया (पत्नी) के साथ हम लोगों को रुख़सत करने के लिए मौजूद थे। इतनी देर तक उन्हें

इन्तिज़ार की ज़हमत उठानी पड़ी। इन सब बातों पर क़ाबू पाया जा सकता है, लेकिन उसकी तरफ़ शायद तवज्जोह नहीं होती।

मक्का मुकर्रमा से मदीना मुनव्वरा तक का फ़ासला चार सौ बीस किलोमीटर और जिद्दा से मदीना मुनव्वरा का फ़ासला तीन सौ छियानवे किलोमीटर है। सड़क-कुशादा, वसीअ और दो तरफ़ा है। उसपर एक ही वक़्त में छः गाड़ियों का आना-जाना हो सकता है। तीन गाड़ियाँ एक तरफ़ से और तीन गाड़ियाँ दूसरी तरफ़ से। आने-जाने के रास्ते अलग-अलग हैं। दरमियान में बीस मीटर जगह छूटी हुई है। इस शानदार सड़क पर ज़्यादा से ज़्यादा चार-साढ़े चार घंटे के अन्दर मक्का या जिद्दा से मदीना मुनव्वरा पहुँचा जा सकता है। लेकिन बस-ड्राइवरों की बेनियाज़ी और क़ानूनी-कार्रवाइयों में पूरी रात गुज़र जाती है। चुनाँचे हम लोगों ने भी रात जागकर गुज़ारी और सुबह साढ़े आठ बजे बस ने हमें मदीना मुनव्वरा में हरम शरीफ़ के क़रीब उतार दिया। साथियों ने बताया कि यह कम वक़्त लगा है। आम तौर पर इससे भी ज़्यादा वक़्त लगता है। चुनाँचे वापसी पर हमें इसका तजुर्बा भी हुआ। सड़क पर उतरकर मैंने अपने दोस्तों को फ़ोन करना चाहा। मेरे पास सऊदी सिक्के तो थे, लेकिन क़रीब में जितने टेलीफ़ोन बूथ थे उनमें कार्ड सिस्टम था और कार्ड मेरे पास नहीं था। मैंने एक दुकानदार से फ़ोन करने की दरख़ास्त की, उसने ख़ुशी से नम्बर मिला दिया। फ़ोन पर बात होते ही जनाब मसीहुर्रहमान साहब, जनाब आरिफ़ुल-हक़ साहब और जनाब अब्दुर्रज़्ज़ाक़ साहब पहुँच गए। अब्दुर्रज़्ज़ाक़ साहब, उनकी पत्नी और उनके बच्चे हमारी हर छोटी-बड़ी ज़रूरत का बड़ा ख़याल रखते थे। हर तरह का आराम रहा।

जनाब आरिफ़ुल-हक़ साहब, नज़ीर अहमद साहब और जनाब हामिद साहब हम लोगों को नमाज़ के लिए हरम शरीफ़ पहुँचाते। जब तक हमारा जी चाहता, हम लोग वहाँ रहते। फिर कोई दोस्त आते और हमें वापस ले जाते। लेकिन नमाज़े-ज़ुहर कभी-कभी क़रीब की मस्जिद

में अदा होती रही। मस्जिदे-नबवी में चालीस फ़र्ज़ नमाज़ें अदा करने का रिवाज-सा हो गया है। उसका बड़ा सवाब बयान किया जाता है। इसके लिए कम-से-कम एक हफ़्ता क़ियाम की कोशिश होती है। यह अज्रो-सवाब किसी सहीह हदीस से साबित नहीं है। इस रिवाजे-आम की हमसे पाबन्दी न हुई और न हम यह चाहते थे। इसके बावजूद हम दोनों को तक़रीबन चालीस नमाज़ें अदा करने की सआदत मिली।

मक्का मुकर्रमा और काबा के बाद एक मुसलमान के लिए सबसे ज़्यादा पुरकशिश मदीना मुनव्वरा और मस्जिदे-नबवी है। इससे पहले भी दो बार हाज़िरी की सआदत नसीब हुई। लेकिन जब देखिए हरमे-नबवी में नई कशिश महसूस होती है। इसकी तामीर में वह मुक़द्दस हस्ती शरीक थी जो सैयदुन्नास थी और उसके वे साथी मुआविनत कर रहे थे जिनको दुश्मनों पर सख़्त और ईमानवालों पर रहीम कहा गया है। मैं बैठा उस हस्ती के बारे में सोचने लगा, जिसकी आँख के एक इशारे पर उसके साथियों की जानें निसार होती थीं, जिसका हर अमल उम्मत के लिए नमूना था, जिसकी पूरी ज़िन्दगी उस्वए-हसना थी, जिसके नक़्शे-क़दम से रहनुमाई मिलती थी, जिसने ज़ुह्द फ़िद्-दुनिया के साथ हुक्मरानी और सियासत का भी दर्स दिया, जिसकी रातें ख़ुदा की इबादत में और जिसके दिन उसके दीन की दावतों, तब्लीग़ और सरबुलन्दी की जिद्दोजुहद में लग गए थे, जिसके चारों तरफ़ दुनिया की दौलत उमड़ आई, लेकिन उसने एक मुसाफ़िर की तरह ज़िन्दगी बसर की, ज़ो कहा करता था, "मेरा दुनिया से क्या ताल्लुक़? मेरा दुनिया से बस इतना ही ताल्लुक़ है जैसे कोई सवार किसी पेड़ के नीचे साए में ठहर जाए, फिर चल पड़े और उसे छोड़ दे।"

(अहमद, तिर्मिज़ी, इब्ने-माजा)

जिस महान हस्ती के ज़रीए संसार को इल्म की रौशनी मिली, मकारिमे-अख़लाक़ मिले, आला सीरत और हमदर्दी और दया-करुणा मिली, न्याय और इनसाफ़ की दौलत मिली। हुक़ूक़ मिले, कमज़ोर को ताक़त मिली, ज़ोर-आवर को एहसास हुआ कि वह क़ानून के सामने लाचार और बेबस है, जिसने बराबरी के तसव्वुर को आम किया,

ऊँच-नीच के सारे बनावटी भेद-भाव मिटाए; इज़्ज़त व ज़िल्लत के झूठे पैमाने ख़त्म किए और तक़वा और ख़ुदातरसी को बुज़ुर्गी और पाकी का पैमाना क़रार दिया। मैं उस मुक़द्दस हस्ती और उस अज़ीम कारनामे के बारे में सोचने लगा। इतना अज़ीम कारनामा, जिसकी कोई मिसाल पेश करने से तारीख़ के पन्ने ख़ाली हैं, कैसे अंजाम पाया? किन हालात में अंजाम पाया? सीरत और इतिहास की किताबों में पढ़ा है, लेकिन उस वक़्त हरमे-नबवी की पाकीज़ा फ़िज़ा में जहाँ ज़ोर से साँस लेते हुए भी दिल काँप जाता था, मैंने क़ुरआन मजीद से उसका अध्ययन करना चाहा। मैंने सूरा अहज़ाब, सूरा नूर, सूरा मुहम्मद, सूरा फ़तह, सूरा हुजुरात, सूरा मुजादिला और सूरा तलाक़ तक पढ़ा। पढ़ रहा था और आँखों के सामने मुबारक दौर की तसवीर, एक फ़िल्म की तरह उभर रही थी। फिर बेइख़्तियार सूरा बक़रा, सूरा आले-इमरान, सूरा माइदा, सूरा अनफ़ाल, सूरा तौबा, ग़र्ज़ सभी मदनी सूरतें पढ़ीं। कुछ अजीब कैफ़ियतों से दो-चार हो रहा था। कभी अल्लाह की किताब पढ़ता, कभी आँखें बन्द कर लेता, कभी क़ुरआन मजीद का नुस्ख़ा हाथ में होता और कभी दोनों ज़ानुओं की ज़ीनत बनता। सोचता कैसा मुबारक इंक़िलाब था? किन नाज़ुक हालात में बरपा हुआ, कैसी मुख़ालिफ़तें हुईं? क्या-क्या साज़िशें? उनके जवाब में क्या तदबीर इख़्तियार की गई और क्या हिकमत, दानाई थी जिनका ठीक वक़्त पर मुज़ाहरा होता रहा? क़ुरआन मजीद की तिलावत का एक नया लुत्फ़ आया। महसूस हुआ कि कुछ नए गोशे सामने आ रहे हैं। मैं एक ऐसे आलम को देखने की कोशिश कर रहा था, जिसे देखने की तमन्ना, सबसे बड़ी तमन्ना है। क्या मालूम कि यह तमन्ना कब पूरी होगी और सआदत की वह सुबह कब तुलूअ (उदय) होगी, जिसने पूरी दुनिया को रौशनी से भर दिया था? किसी भी मस्जिद में नमाज़ पढ़ने का जो सवाब है, उससे हज़ार गुना मस्जिदे-नबवी में नमाज़ अदा करने का सवाब है और बैतुल्लाह शरीफ़ में नमाज़ अदा करने का सवाब तो एक लाख नमाज़ों के बराबर है। चुनाँचे अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* का इरशाद है--

"मेरी इस मस्जिद में नमाज़, दूसरी मस्जिदों की हज़ार नमाज़ों से बेहतर है। मस्जिदे-हराम इससे मुस्तसना (अलग) है (इसका सवाब उससे ज़्यादा है।)" (हदीस : बुख़ारी व मुस्लिम)

जब यह हदीसे-मुबारका ज़ेहन पर उभरती तो जी चाहता कि नमाज़ के लिए खड़ा हो जाऊँ। मस्जिदे-हराम की नमाज़ें भी आम नमाज़ों की तरह ग़फ़लत ही की नमाज़ें रहीं, लेकिन कभी-कभी एक तरह का कैफ़ व सुरूर और लज़्ज़त भी महसूस हुई। यूँ महसूस हुआ जैसे ख़ुदा के सामने खड़ा हूँ। गुनाहों का एहसास उभर रहा है, दिल का ज़ंग दूर हो रहा है और ख़ुदा से नज़दीकी का लुत्फ़ मिल रहा है। ऐसे में दुआओं की लज़्ज़त भी मिली। ख़ुदा से माँगने में, जो लज़्ज़त है, उसे किन शब्दों में बयान किया जा सकता है?

मस्जिदे-नबवी जो इस्लामी शासन का केन्द्र थी। जहाँ से पूरे अरब भू-भाग पर हुकूमत हो रही थीं, उसकी लम्बाई सिर्फ़ सौ ग़ज़ थी और चौड़ाई भी तक़रीबन उतनी ही थी। यानी मस्जिद की शक्ल वर्गाकार थी। बुनियाद तीन गज़ खोदी गई थी। बुनियादें पत्थर की और दीवारें ईंट की थीं। खजूर के तनों के सुतून थे। खजूर ही के पत्तों की छत थी। छत इतनी नीची थी कि आदमी खड़ा होकर उसे छू सकता था। बारिश में छत टपकती थी। बाद में छत मिट्टी से पाटी गई। मस्जिद की तामीर में सात माह या एक साल के क़रीब वक़्त लगा। फ़र्श कंकरियों का था। ख़ैबर की जंग के बाद इसको और बढ़ा दिया गया। हज़रत उसमान *(रज़ि.)* ने उसके लिए ज़मीन ख़रीद कर वक़्फ़ की थी। मस्जिद के आख़िरी हिस्से में एक चबूतरा (सुफ़्फ़ा) था, उसपर छत पड़ी हुई थी, शायद यह मस्जिद के बाद बनाया गया। जब मुहाजरीन (अर्थात दीन की ख़ातिर घर-बार छोड़नेवालों) की तादाद ज़्यादा हो गई और उनमें से कुछ के ठहरने का इन्तिज़ाम न था तो वह चबूतरा ही उनके ठहरने की जगह था। जो लोग यहाँ ठहरे हुए थे और दीने-इस्लाम की तालीम हासिल करते रहते थे, उनके मआश (आजीविका) का कोई मुस्तक़िल इन्तिज़ाम न था। रात में नबी सल्लललाहु अलैहि वसल्लम

मुख़्तलिफ़ सहाबा के यहाँ उनके खाने का नज़्म फ़रमाते थे। दिन में ये हज़रात अपने तौर पर गुज़र-बसर के लिए कोशिश करते रहे होंगे।

हज़रत उमर *(रज़ि.)* के ज़माने में मस्जिद को आगे की तरफ़ बढ़ाया गया। हज़रत उसमान *(रज़ि.)* ने इसको और बढ़ाया। बाद में इसमें लगातार बढ़ोत्तरी होती रही। अब हरम शरीफ़ में असाधारण बढ़ोत्तरी ही गई है और उसका इन्तिज़ाम भी बहुत ज़्यादा तारीफ़ के क़ाबिल है।

क़ुरआन मजीद की हिदायत है—

"ऐ लोगो जो ईमान लाए हो, अपनी आवाज़, नबी की आवाज़ से बुलन्द न करो और न नबी के साथ ऊँची आवाज़ से बात करो, जिस तरह तुम आपस में एक-दूसरे से करते हो। कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारा किया-कराया सब अकारथ हो जाए और तुम्हें ख़बर भी न हो।" (क़ुरआन, 49 : 2)

प्यारे नबी *(सल्ल.)* की वफ़ात के बाद भी आपका अदब व एहतिराम ज़रूरी है। उसका एक तक़ाज़ा यह है कि आपकी मस्जिद में शोरो-ग़ुल न हो और हर आन अदब व एहतिराम का ख़याल रखा जाए। हज़रत उमर *(रज़ि.)* के बारे में आता है कि उन्होंने दो आदमियों को मस्जिदे-नबवी में झगड़ते देखा। पूछा कि तुम लोग कहाँ के रहनेवाले हो? उन्होंने अर्ज़ किया कि हम ताइफ़ से ताल्लुक़ रखते हैं। हज़रत उमर *(रज़ि.)* ने फ़रमाया कि अगर तुम मदीना के होते तो मैं तुम्हें इस बेअदबी पर सज़ा देता। (चूँकि बाहर से आए हो और मस्जिद के आदाब नहीं जानते हो इसलिए नज़रअन्दाज़ किया जा रहा है।)

(हदीस : मिश्कात, ब-हवाला बुख़ारी)

मदीना मुनव्वरा की ज़ियारत और मस्जिदे-नबवी में नमाज़, हज का जुज़ नहीं है। इसलिए उसके साथ एहराम वग़ैरह की पाबन्दी नहीं है। किसी भी महीने में और किसी भी दिन ज़ियारत हो सकती है। हज के महीनों की शर्त नहीं है, लेकिन हज को जानेवाले मस्जिदे-नबवी की ज़ियारत से महरूम रहना पसन्द नहीं करते। इससे बड़ी महरूमी और हो भी क्या सकती है कि आदमी हज के लिए मक्का मुकर्रमा जाए और मदीना मुनव्वरा न पहुँचे। मस्जिदे-हराम, मस्जिदे-अक़्सा, और मस्जिदे-नबवी को ख़ास अज़मत और इम्तियाज़ हासिल है। उनकी ज़ियारत के

रादे से सफ़र भी किया जा सकता है। इनके अलावा किसी और बादतगाह के लिए ख़ास तौर पर सफ़र करना सही नहीं है। हज़रत बू-सईद ख़ुदरी *(रज़ि.)* की रिवायत है कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने रमाया—

"तीन मस्जिदों के अलावा किसी और मस्जिद के लिए (सवाब की नीयत से) सफ़र नहीं किया जाएगा। वे हैं मस्जिदे-हराम, मस्जिदे-अक़्सा और मेरी यह मस्जिद।"

(हदीस : बुख़ारी व मुस्लिम)

04 अप्रैल को जनाब आरिफ़ुल-हक़ साहब के साथ हम दोनों फ़ज्र ी नमाज़ के लिए मस्जिदे-नबवी पहुँचे। पहले से तय प्रोग्राम के तहत माज़ से फ़ारिग़ होने के बाद अज़ीज़म मुहीयुद्दीन ग़ाज़ी फ़लाही और ज़ीज़म अब्दुल्लाह हम्माद भी हरम पहुँच गए। वह छोटा-सा क़ाफ़िला क़ामाते-मुक़द्दसा की ज़ियारत के लिए रवाना हुआ। ये मक़ामात मेरी हलिया के लिए नए थे, लेकिन जब भी देखिए ताज़गी का एहसास ोता है। इनके साथ हमारी तारीख़ जुड़ी हुई है। उहुद पहाड़ पर पहुँचे, गे-उहुद याद आ गई। फ़तह के बाद शिकस्त का यह पहला तजुर्बा ा। इसमें बहुत-सी कमज़ोरियाँ भी समाने आईं और उनके सुधार की ेदायत की गई। एक मौक़े पर अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

"यह उहुद पहाड़ है, यह हमसे मुहब्बत करता है और हम इससे मुहब्बत करते हैं।" (हदीस : बुख़ारी)

जब कोई तकलीफ़ देने वाला वाक़िआ पेश आता है तो कमज़ोर ाहन का आदमी उस जगह को भी मनहूस और नामुबारक समझने गता है, जहाँ वह वाक़िआ पेश आया। अल्लाह के रसूल के इस रमान का शायद यही पस-मंज़र हो। आप *(सल्ल.)* ने बताया कि शिकस्त का इस पहाड़ से कोई ताल्लुक़ नहीं है। यह तो हमसे मुहब्बत रता है और हम भी इससे मुहब्बत करते हैं।

इसके बाद शहीदों का क़ब्रिस्तान देखा। दुआ के लिए बेइख़्तियार ाथ उठ गए। मस्जिदे-क़िब्लतैन पहुँचे, जहाँ क़िब्ला बदले जाने के हुक्म ़ बाद नामज़ का रुख़ बदल दिया गया था। उस वक़्त बैतुल-मुक़दिस ी तरफ़ रुख़ करके नमाज़ पढ़ी जा रही थी। इसी हालत में काबा

शरीफ़ की तरफ़ रुख कर लिया गया। मस्जिदे-क़ुबा भी देखी, जिसकी तारीफ़ में क़ुरआन मजीद ने कहा—

"जो मसजिद अव्वल रोज़ से तक़वा पर क़ायम की गई है, वही उसके लिए ज़्यादा मुनासिब है कि तुम उसमें (इबादत के लिए) खड़े हो। उसमें ऐसे लोग हैं जो पाक-साफ़ रहना पसन्द करते हैं और अल्लाह को पाकीज़गी अपनानेवाले ही पसन्द हैं।"

(क़ुरआन, 9 : 108)

अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने हिजरत के वक़्त मदीना पहुँचने से पहले इस मस्जिद में नमाज़ अदा की थी। हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर *(रज़ि.)* फ़रमाते हैं कि "हर शनिवार को अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* कभी पैदल और कभी सवारी पर इस मस्जिद में तशरीफ़ ले जाते और दो रकअत नमाज़ अदा फ़रमाते।" (हदीस : बुख़ारी व मुस्लिम)

वहाँ दो रकअत नमाज़ अदा करने की तौफ़ीक़ मिली। आगे बढ़कर हज़रत सलमान फ़ारसी *(रज़ि.)* का कुआँ देखा। कहा जाता है कि अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* के मुबारक हाथों से यहाँ खजूर का एक पेड़ लगाया गया था, जो सदियों बाक़ी रहा। क़अब-बिन-अशरफ़ यहूदी का क़िला भी इबरत (सबक़ हासिल करने) के साथ देखा। जबले-मेहरूक़ (मेहरूक़ पहाड़) के क़रीब से गुज़रे। ख़न्दक़ के निशानात तो महफ़ूज़ नहीं हैं, अलबत्ता 'सबअ मसाजिद' जो मुख़्तलिफ़ सहाबा-ए-किराम के नाम से पहचानी जाती हैं, उन्हें देखने का मौक़ा मिला। चार-पाँच घंटे के सफ़र से वापसी हुई। थोड़ी देर आराम किया, ग़ुस्ल और नाश्ते से फ़ारिग हुए और जुमे की नमाज़ के लिए रवाना हो गए। जुमे की नमाज़ से फ़ारिग होने के बाद रौज़ए-मुबारक पर हाज़िर हुए। भीगी आँखों से सलाम अर्ज़ किया। कितनी बड़ी सआदत है कि हर उम्मती का सलाम शाहे-दो-आलम की ख़िदमत में पेश होता रहता है। उम्मीद है कि हम जैसे गुनाहगार भी इस सआदत से महरूम न होंगे। मेरा सलाम भी ज़रूर पहुँचा होगा।

अल्लाहुम-म सल्लि अला मुहम्मदिवँ व बारिक व सल्लिम।

कई दिनों की कोशिशों के बाद आज रौज़तुल-जन्नत में दो रकअत नमाज़ अदा करने का मुबारक मौक़ा मिला।

अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

"मेरे घर और मेरे मिम्बर के बीच का हिस्सा जन्नत के बाग़ों में से एक बाग़ है और मेरा मिम्बर हौज़े-कौसर पर है।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

ज़मीन के जिस हिस्से पर सुबह व शाम अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के मुबारक क़दम पड़ते रहे हों, जहाँ उनकी मुबारक पेशानी ख़ुदा के दरबार में सजदा-रेज़ रही हो वह यक़ीनन जन्नत ही का टुकड़ा है। कुछ उलमा ने लिखा है कि हो सकता है यह जन्नत ही का टुकड़ा है। हालाँकि वह देखने में आम ज़मीन ही की तरह है। जिस रहीम व करीम अल्लाह ने जन्नत के इस हिस्से पर सजदा करने की तौफ़ीक़ दी, उम्मीद है कि अपनी ख़ास मेहरबानी से आख़िरत में भी उसी जन्नत से सरफ़राज़ फ़रमाएगा। हरम शरीफ़ में यह जो वक़्त गुज़रा उसमें हमारे दोस्त मुहतरम नज़ीर अहमद साहब साथ थे। डॉ॰ कलीमुर्रहमान साहब की अह्लिया (पत्नी) और मेरी अह्लिया भी जुमे के लिए गईं और इस एहसास के साथ अस्र के बाद वापस हुईं कि हरमे-नबवी में जो लम्हे भी गुज़र जाएँ वे ज़िन्दगी के क़ीमती लम्हे हैं।

आज 8 अप्रैल, ज़ी-क़ादा की आख़िरी तारीख़ है और मदीना मुनव्वरा में आए हुए आठ दिन गुज़र चुके हैं। नवाँ दिन शुरू हो चुका है। फ़ज्र, ज़ुहर और अस्र की नमाज़ें हम दोनों की हरम शरीफ़ में अदा हुईं, अब्दुर्रज़्ज़ाक़ साहब और उनके भतीजे ख़ालिद साहब साथ थे। आज ही दोबारा मक्का शरीफ़ रवानगी है। दुआ की और इस तरह दुआ की जिस तरह एक ग़ाफ़िल इनसान दुआ करता है। लेकिन अपनी तमाम कोताहियों और कमियों के बावजूद अल्लाह ने जब यहाँ पहुँचाया है तो उम्मीद है कि अपनी मेहरबानी से बेजान लफ़्ज़ों में जान भी डाल देगा और एक बेख़बर इनसान की दुआएँ भी क़बूल करेगा। सलातो-सलाम हो उस मुक़द्दस व पाक हस्ती और उसके साथियों पर जिसके सदक़े में ईमान व इस्लाम की दौलत मिली। ऐ ख़ुदा, बार-बार हाज़िरी का मौक़ा इनायत कर; जी भरा है, न भर सकता है।

मदीना मुनव्वरा में क़ियाम के दौरान जामिआ मदीना मुनव्वरा के कुछ हिन्दुस्तानी छात्र और रिसर्च स्कॉलर्स से दो बार तफ़सीली मुलाक़ात

रही। वक़्त के इल्मी व फ़िक्री मसाइल और उनके तक़ाज़ों की तरफ़ तवज्जोह दिलाई गई। फ़िक़ही इख़्तिलाफ़ात में सही नज़रीए को वाज़े किया गया और मस्लके-सल्फ़ पर भी गुफ़्तगू रही।

कुछ और दोस्त इसी तरह के मौज़ूआत (विषयों) पर गुफ़्तगू के लि जिद्दा से मक्का मुकर्रमा पहुँचे और मेरी गुज़ारिशें रिकॉर्ड कीं।

मदीना से वापसी

8 अप्रैल अस्र की नमाज़ के बाद मदीना मुनव्वरा से मक्का मुकर्रमा के लिए रवानगी हुई। आरिफ़ुल-हक़ साहब और अब्दुर्रज़्ज़ाक़ साहब ने रुख़सत के लिए बस अड्डे पहुँचाया। लेकिन ग़ैर-मामूली देर होती रही। मग़रिब और इशा की नमाज़ें वहीं अदा कीं। रात में आ बजे के क़रीब बस रवाना हुई। इतनी देर तक इन दोनों दोस्तों व इन्तिज़ार की तकलीफ़ उठानी पड़ी। मदीना मुनव्वरा के रास्ते से मक्का मुकर्रमा आनेवालों के लिए मीक़ात (वह जगह जहाँ हज के लिए एहराम बाँधा जाता है) ज़ुल-हुलैफ़ा है। इसको ख़ुद अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* तय किया था। हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर *(रज़ि.)* की रिवायत है कि आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

> "मदीनावाले (हज व उमरा के लिए) ज़ुल-हुलैफ़ा से तल्बिया पढ़ेंगे, शाम (सीरिया) के रहनेवाले जुहफ़ा से, नज्दवाले क़रन मनाज़िल से और यमनवाले यलमलम से तल्बिया पढ़ेंगे।"
>
> (हदीस : बुख़ारी व मुस्लिम)

इसके अलावा और रिवायतें बुख़ारी व मुस्लिम शरीफ़ में देखी सकती हैं।

तल्बिया के शब्द ये हैं—

> "लब्बै-क अल्लाहुम-म लब्बैक, लब्बै-क ला शरी-क ल-क इन्नल हम-द वन-निअ-म-त ल-क वल मुल-क ला शरी-क लक।"
>
> (मैं हाज़िर हूँ, ऐ अल्लाह! हाज़िर हूँ। तेरा कोई साझी नहीं, बेशक फ़ज़्ल और एहसान तेरा ही है, सल्तनत और इक़्तिदार तेरा ही है, तेरा कोई साझी नहीं।) (हदीस : बुख़ारी व मुस्लिम)

हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के हाजियों के लिए मीक़ात यलमलम है। ज़ुल-हुलैफ़ा मदीना मुनव्वरा से आठ-दस किलोमीटर की दूरी पर है। लगभग बीस मिनट में बस मीक़ात पर पहुँच गई। यहाँ हज करने जाने वालों के लिए बड़े ही अच्छे और उम्दा इन्तिज़ामात हैं। साफ़-सुथरी और लम्बी-चौड़ी मस्जिद, जदीद (आधुनिक) अंदाज़ के ग़ुस्लख़ाने, ग़ुस्ल और वुज़ू के लिए गरम व ठंडा पानी, बहुत कुछ मौजूद है। लेकिन न जानने की वजह से कुछ लोग ठीक से फ़ायदा नहीं उठा पाते। हमारी बस सड़क के किनारे रुकी। मीक़ात पर वुज़ू और नमाज़ से फ़ारिग़ होने के बाद मैंने एहराम बाँधा और हम दोनों बाहर आए तो बस अपनी जगह पर नहीं थी। कुछ लोगों ने तलाश में मदद दी, लेकिन बस नहीं मिली। काफ़ी देर परेशान रहे, 9:30 के बाद बस मिली। शायद उसकी जगह बदल गई थी। 12 बजे एक जगह बस रुकी तो इस तरह रुकी कि ड्राइवर साहब का पता ही न चला। वे कहीं आराम कर रहे थे। अब ढाई बज चुके थे। मुसाफ़िर सख़्त परेशान थे। ड्राइवर साहब तशरीफ़ लाए तो मुसाफ़िरों ने नागवारी ज़ाहिर की, लेकिन उनपर इसका कोई असर न हुआ। तीन बजे के क़रीब बस चली। थोड़ी देर के बाद फ़ज्र की नमाज़ के लिए रुक गई। इस तरह 9 अप्रैल को 8:30 बजे के क़रीब मक्का मुकर्रमा पहुँचे। मुअल्लिम यानी हाजियों के गाइड की टैक्सी ने डॉक्टर मुहम्मद आसिफ़ अली के घर पहुँचा दिया। थकान इतनी ज़्यादा थी कि उमरा करने की हिम्मत नहीं हुई।

10 अप्रैल (2 ज़िलहिज्जा) को हम दोनों ने हरम में फ़ज्र की नमाज़ पढ़ी। इसके बाद उमरा अदा किया। ज़्यादा भीड़ की वजह से काफ़ी वक़्त लगा। ज़ाहिर में तो हर रुक्न अदा हो रहा है, लेकिन रूह और जज़्बे से ख़ाली है। अल्लाह और उसके रसूल *(सल्ल.)* के हुक्म के तहत बज़ाहिर जो दौड़-धूप हो रही है, दुआ है कि अल्लाह उसे अपने ख़ास फ़ज़्ल से क़बूल कर ले।

आज 15 अप्रैल (8 ज़िलहिज्जा) है। अब हज के दिन शुरू हो चुके हैं। हमारा हज मुअल्लिम के साथ नहीं है। भाई जनाब अरशद सिराजुद्दीन साहब कुछ लोगों के साथ हज करते हैं। अब की बार चालीस से ज़्यादा लोगों का उन्होंने इन्तिज़ाम किया था। दोस्तों ने तय

किया कि हमारा हज भी उसी क़ाफ़िले के साथ हो। काफ़िले वे
ज़्यादातर लोग सुबह मिना पहुँच गए। हमारा प्रोग्राम भी सवेरे ही पहुँचने
का था, लेकिन कुछ इन्तिज़ामी परेशानियों की वजह से अरशद
सिराजुद्दीन साहब पाँच-सात लोगों को, जिनमें हम दोनों भी शामिल थे
11:30 बजे लेकर रवाना हुए। हमारी गाड़ी जब मिना की तरफ़ रवाना
हुई तो हमने दूर ही से देखा कि मिना में ज़बरदस्त आग लगी हुई है
धुआँ बादल की तरह उठकर आसमान पर छा रहा है। जब हम मिना के
क़रीब पहुँचे तो मालूम हुआ कि एहतियात के लिए रास्ते बन्द कर दिए
गए हैं। हम लोग मजबूरन पाँच बजे तक एक जगह रुके रहे। इसके
बाद मिना पहुँचे। उस वक़्त तक आग बुझ चुकी थी और न
इन्तिज़ामात हो रहे थे। हमारा कैम्प हादसे की जगह से दूर और जमरा
के क़रीब था। अल्हम्दुलिल्लाह कैम्प के लोगों का जानी और माली को
नुक़सान नहीं हुआ।

मिना में आग लगने के छोटे-मोटे वाक़िए होते रहते हैं। लेकि
पिछले कुछ सालों में शायद यह सबसे बड़ा हादसा था। इस
सत्तर-अस्सी हज़ार ख़ेमे जलकर राख हो गए थे, सैकड़ों लोग मारे ग
थे, जिनमें ज़्यादातर का ताल्लुक़ भारत, पाकिस्तान और ईरान से बता
जाता है। बदहवासी और परेशानी के साथ जान बचाने की फ़ि
की यह कैफ़ियत बयान की जाती है कि बहुत-से लोगों को रास्ता
समझ में नहीं आ रहा था कि किधर भागें। कुछ लोग पहाड़ पर चढ़
की कोशिश कर रहे थे, कुछ लोग हरम की तरफ़ भाग रहे थे और कु
लोग मुख़ालिफ़ सिम्त में जा रहे थे। सामान और माल के नुक़सान व
अंदाज़ा नहीं किया जा सका और शायद इसका अन्दाज़ा करना मुश्कि
भी था। यह आग कैसे लगी? कहाँ से शुरू हुई। कहाँ तक फैली? य
आग किसकी बेएहतियाती से लगी? उसपर उसी वक़्त कंट्रोल किया
सकता था या नहीं? इसपर बहुत बहस हो चुकी और आइन्दा भी हो
रहेगी और उसकी वजहें तलाश की जाती रहेंगी, लेकिन मिना अं
अरफ़ात में जहाँ लाखों का मजमा होता है। शायद अब की बार बी
लाख का मजमा था। कुछ बातें ध्यान देने के क़ाबिल हैं, जिनमें—

1. ख़ेमे फ़ायर-प्रूफ़ होने चाहिएँ, इसके बावजूद भी आग लगने का इमकान (सम्भावना) है। इसके लिए आग बुझाने का माक़ूल इन्तिज़ाम बड़े-बड़े ख़ेमों में ज़रूर होना चाहिए। ख़ेमे इतने क़रीब होते हैं कि ज़रूरत के वक़्त आदमी भागना चाहे तो भी भाग नहीं सकता। उनके बीच में फ़ासला होना चाहिए।
2. मिना और अरफ़ात में हुकूमत के कर्मचारियों (स्टाफ़) के साथ मेहमानों के लिए मख़्सूस कैम्प न हों। इससे जगह बहुत घिर जाती है। जिस तरह मस्जिद में लोग छोटे-बड़े के फ़र्क़ के बग़ैर नमाज़ अदा करते हैं, उसी तरह उन्हें भी हज के मनासिक अदा करने चाहिएँ।
3. मिना व अरफ़ात में गैस सिलेंडर, स्टोव या कोई भी ज्वलनशील पदार्थ ले जाने पर पाबन्दी होनी चाहिए और तैयार खाना मुहैया कराया जाना चाहिए। हाजियों को भी हज के दिनों में जो खाना दिया जाए, चाहे वह उनके टेस्ट के मुताबिक़ न हो, गवारा करना चाहिए।

रात मिना में गुज़री। मिना में नमाज़ें क़स्र पढ़ी जाती हैं। इस हादसे और इसके नतीजे में जो दौड़-भाग हुई उसमें नमाज़, ज़िक्रो-फ़िक्र और इबादत का कोई एहतिमाम नहीं हो सका। जगह की बहुत ज़्यादा तंगी भी एक रुकावट थी। यूँ महसूस हुआ जैसे यह मुबारक रात बर्बाद हो गई। अल्लाह माफ़ फ़रमाए और सिर्फ़ मिना में क़ियाम की बरकत से अपने करम से नवाज़े।

16 अप्रैल (9 ज़िलहिज्जा); आज यौमे-अरफ़ा है। अरफ़ा ही अस्ल हज है। यहाँ का क़ियाम, चाहे थोड़े ही वक़्त के लिए क्यों न हो, ज़रूरी है। अगर यहाँ बिल्कुल क़ियाम न किया जाए तो हज ही न होगा। सुबह ही से मिना से अरफ़ा रवानगी शुरू हो जाती है। हमलोग कुछ देरी से 9:15 बजे रवाना हो सके। ट्रैफ़िक की वजह से दो घंटे में अरफ़ात के मैदान पहुँचे। लेकिन भाई अरशद साहब (जो हमारे साथ थे) और ड्राइवर दोनों ही रास्ता भूल गए। आख़िरकार एक बजे के क़रीब सख़्त गर्मी में हम लोग ख़ेमे में पहुँचे। अरफ़ात में इमाम साहब का ख़ुत्बा न सुन सके। ज़ुहर व अस्र की नमाज़ एक साथ और क़स्र अदा की, यही

मसनून है। नमाज़ के बाद तिलावत और दुआ में लगे रहे। बीस लाख का मजमा अल्लाह के दरबार में दुआओं में मसरूफ़ था। कहीं-कहीं इज्तिमाई दुआएँ भी हो रही थीं। कुछ वक़्त के लिए लोग दुआओं की कोई किताब लेकर बैठ जाते थे। एक शख़्स पढ़ता जाता और दूसरे सुनकर आमीन कहते रहते। ऐसे मौक़े पर देखने में यह आया कि कुछ लोग थककर बैठ जाते हैं। कुछ लोग अलग से अपनी दुआओं में लग जाते हैं। कुछ लोग बेदिली से हाथ उठाए रहते हैं। ये इज्तिमाई दुआएँ फ़ितरी तौर पर उस तास्सुर से .ख़ाली मालूम हो रही थीं जो निजी दुआओं में पाया जाता है। अल्लाह के बहुत-से बन्दे बड़ी इनकिसारी के साथ .ख़ुदा के दरबार में हाथ फैलाए बैठे थे। उसके करम से तवक़्क़ो है कि हम जैसे गुनहगारों की दुआओं को भी क़बूलियत का दरजा हासिल होगा।

दुआ अपने दीन व ईमान के लिए की। पूरे सफ़र में कोई .ख़ास वक़्त ऐसा नहीं गुज़रा जिसमें अपने मरहूम वालिदैन के लिए दुआ न की हो। उन्हीं के लुत्फ़ो-मुहब्बत और ईसारो-कुरबानी के नतीजे में दीन के इल्म की तौफ़ीक़ के साथ दीन की टूटी-फूटी ख़िदमत का मौक़ा मिला। अफ़सोस है कि जब तक वे हयात रहे उनका हक़ अदा न हुआ और उनकी ख़िदमत न की जा सकी। अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ने इस कोताही की तलाफ़ी के लिए फ़रमाया है, "वालिदैन के इन्तिक़ाल के बाद उनकी मग़फ़िरत और दरजात की बुलन्दी की दुआ की जाती रहे।" अपने बच्चों के लिए दुआ की। उन सबके लिए दुआ की जिन्होंने सिर्फ़ अच्छा गुमान रखते हुए दुआ की दरख़ास्त की थी। अपने माज़ी (गुज़रे ज़माने) की तरफ़ देखता हूँ और ज़िन्दगी जिस तरह गुज़री उसके बारे में सोचता हूँ तो शदीद एहसास होता है कि बड़ा हिस्सा ग़फ़लत की नज़र हो गया। दुआ है कि ज़िन्दगी का जो हिस्सा रह गया है उसमें उसकी तलाफ़ी की तौफ़ीक़ और सलाहियत दे। अल्लाह का करम है कि शुरू ही से दिलचस्पी दीन के मुताले से रही और दीनी लेख (मज़ामीन) लिखने की तौफ़ीक़ अल्लाह की मेहरबानी से मिली। इस जोश में बहुत-से विषय छेड़ रखे हैं। अपनी सुस्त रफ़्तारी की वजह से उनको पूरा होने के लिए बड़ा वक़्त चाहिए। दुआ है और यही दुआ अरफ़ात में

ना में, मुज़दलफ़ा में और .ख़ुदा के घर में बैठकर की कि वह मेरे ौक़ात में बरकत दे और आधे-अधूरे कामों को पूरा करने की क़ुव्वत ौर सलाहियत दे। क़लम व ज़बान को बे-राहरवी, ग़लतियों और ग़लत ोज़ों की तरफ़ जाने से बचाए। जब तक जिस्म व जान का रिश्ता ाक़ी है, ज़िन्दगी अल्लाह के दीन की राह में गुज़रे। वह दिन न आने ाए जब दुनिया मक़सूद बन जाए और उसके लिए ज़बान व क़लम रकत करने लगें।

मैंने देखा कि अह्लिया (पत्नी) को मुझसे ज़्यादा तवज्जोह और यकसूई हासिल है। वह दर्द व सोज़ के साथ दुआओं में लगी रहती ैं। मैंने कहा, "दुआ मेरे लिए भी करती हो या नहीं।" कहा, "करती हूँ।" मैंने कहा, "क्या करती हो?" कहा, "जो दुआ करनी है वह करती हूँ। यह न पूछिए कि क्या करती हूँ।" सही बात यह है कि यह बात पूछने की है भी नहीं। अरफ़ात में कैम्प के लोगों की .ख़ाहिश पर आधा घंटा ख़िताब रहा। इसमें हज की अहमियत, मक़सद और मतलब के साथ यौमे-अरफ़ा (अरफ़ा-दिवस) की फ़ज़ीलत पर अपने .ख़यालात का इज़हार किया।

मग़रिब से पहले ही मुज़दलफ़ा रवानगी की तैयारी शुरू हो गई। 6:30 बजे हम लोग बस में सवार हुए, लेकिन ट्रैफ़िक की वजह से रास्ता जाम था। ज़्यादा से ज़्यादा आधे घंटे का रास्ता तक़रीबन तीन घंटे में तय हुआ। हम लोग पौने दस बजे मुज़दलफ़ा पहुँचे। मग़रिब और इशा की नमाज़ें एक छोटी-सी जमाअत के साथ पढ़ी। मुजदलफ़ा में दोनों नमाज़ें इकट्ठा पढ़ी जाती हैं और क़स्र पढ़ी जाती हैं। जैसी भी अल्लाह ने तौफ़ीक़ दी दुआ व इबादत में लगे रहे।

17 अप्रैल (10 ज़िलहिज्जा) को नमाज़े-फ़ज्र के फ़ौरन बाद मिना के लिए रवाना हो गए और जल्द ही मिना पहुँच गए। हमारा .ख़ेमा जमरात से क़रीब था। इसके बावजूद सड़क से जमरात तक पहुँचने के लिए सीढ़ियों का एक लम्बा सिलसिला है। वे सीढ़ियाँ दो सौ से कम न होंगी। फिर भी हिम्मत की। कैम्प के दो-एक साथियों के साथ जमरात पहुँचे और रमी का फ़र्ज़ अदा किया। पत्नी की तरफ़ से भी रमी की। वापसी पर थकान का एहसास हुआ, थोड़ी देर आराम के बाद हलक़

कराया (यानी सिर के बाल मुँडाए)। क़ुरबानी की व्यवस्था अरशा
सिराजुद्दीन साहब ने की। नमाज़ें .ख़ेमे ही में अदा होती रहीं।

18 अप्रैल (11 ज़िलहिज्जा) जुमे का दिन है। मिना से लोग गरोह की शक्ल में बड़े शौक़ से जुमा की नामज़ पढ़ने के लिए हरम शरीफ़ जा रहे हैं। सुना है कि दस लाख से ज़्यादा का मजमा था। मेरा भी बहुत जी चाह रहा था कि जुमा की नामज़ हरम में अदा हो। लेकिन ट्रैफ़िक और मुनासिब सवारी के न मिलने की वजह से यह .ख़ाहिश पूरी न हो सकी। अलबत्ता उसका एक फ़ायदा यह हुआ कि एक दोस्त के साथ मैंने और अहलिया (पत्नी) ने तीनों जमरात पर बड़े इत्मीनान के साथ और क़रीब से रमी की। यह .ख़ाहिश भी अल्लाह ने पूरी कर दी मस्जिदे-हराम से लोग वापस नहीं हुए थे, इसलिए भीड़ कम थी।

19 अप्रैल (12 ज़िलहिज्जा) को फ़ज्र की नमाज़ के फ़ौरन बाद ह दोनों तवाफ़े-इफ़ाज़ा के लिए हरम शरीफ़ पहुँचे। भारी भीड़ के बावजू हम लोगों को तवाफ़ के लिए जगह मिल गई। सई में भी कोई परेशा नहीं हुई। इसके बाद मस्जिदे-हराम में थोड़ी देर बैठे। .ख़ुदा के घर व देखते रहे। क्या शान है उस घर की! उसके बयान के लिए अलफ़ा कहाँ से लाए जाएँ।

मताफ़ ही के अन्दर, .ख़ास तौर पर मक़ामे-इबराहीम के पास लो तवाफ़ की सुन्नतें और नवाफ़िल पढ़ने लगते हैं। इस वजह से तवाफ़ सख़्त परेशानियाँ पेश आती हैं। लोगों को परेशानी से बचाने के इरादे अगर सुन्नत व नफ़्ल नमाज़ें मताफ़ से हटकर हरम शरीफ़ में किसी जगह अदा कर लीं जाएँ तो इंशा-अल्लाह सवाब में कमी न होगी मताफ़ इतना लम्बा-चौड़ा है कि यह रुकावट न हो तो हज़ारों लोग ए ही वक़्त में आसानी से तवाफ़ कर सकते हैं।

आज जमरात पर बेपनाह भीड़ थी। जल्द वापसी के इरादे से लो ज़वाल से पहले ही जमरात के क़रीब इकट्ठा होने लगे, ताकि जैसे ज़वाल का वक़्त हो, रमी कर सकें। मैंने दो-एक साथियों के सा हिम्मत की। भीड़ की वजह से एक जगह सख़्त परेशानी हुई। लेकि जमरात तक पहुँचा और अपनी तरफ़ से और अहलिया की तरफ़ से र की। इसमें कोई शक नहीं कि आज की रमी थका देनेवाली थी। इ

ारह हज के मनासिक अब पूरे हो चुके। चार बजे वापसी हुई। ारेअ-मंसूर में कुछ घंटे ठहरने के बाद हम लोग रात में ग्यारह बजे डॉ॰ ुहम्मद आसिफ़ साहब के यहाँ पहुँचे।

डॉक्टर आसिफ़ अली साहब और डॉक्टर रफ़ीआ साहिबा ने इस ़फ़र में दस-ग्यारह रोज़ तक इस क़द्र ख़ुलूस व मुहब्बत से रखा और ेज़बानी की कि दिल से दुआएँ निकलती रहीं। उनके कुछ रिश्तेदार भी ़ज के लिए आए हुए थे। उनके दो-एक दोस्त भी अचानक पहुँच गए। ़बके लिए उन्होंने जगह निकाली। अपनी मसरूफ़ियतों के बावजूद जिस ़रह मेहमानों की ज़रूरतों और उनके आराम का ये दोनों लोग ख़याल ़खते थे वह क़ाबिले-रश्क था।

23 अप्रैल की शाम से 28 अप्रैल की शाम तक जिद्दा में भाई जलील असग़र साहब के यहाँ क़ियाम रहा।

जलील असग़र साहब से अलीगढ़ ही से एक तरह की बेतकल्लुफ़ी है। इसकी वजह से उनका घर अपना घर महसूस हुआ। उनकी अह्लिया और बच्चों ने हम लोगों के आराम का बहुत ख़याल रखा। इस मुद्दत में जिद्दा के बहुत-से दोस्तों, भाई डॉक्टर नजातुल्लाह सिद्दीक़ी साहब, जनाब सैयद यूसुफ़ हाशमी साहब, जनाब अब्दुल-क़ादिर साहब, जनाब अब्दुल-अलीम ख़ान फ़ल्की साहब, जनाब मंज़ूर अहमद साहब, सईद शंबीबी साहब वग़ैरह से मुलाक़ातें रहीं और मुहब्बतों की वजह से खाने-पीने की दावतों का लम्बा सिलसिला रहा। कभी-कभी अच्छे-ख़ासे दोस्त-अहबाब जमा हो जाते थे। उनके दरमियान क़ुरआन का दर्स देने या किसी दीनी विषय पर इज़हारे-ख़याल का मौक़ा भी मिलता रहा। इस तरह ये मुलाक़ातें अल्लाह के शुक्र से दीनी मुलाक़ातें रहीं। 25 अप्रैल को एक होटल में ईद-मिलन का प्रोग्राम था। भारत के काफ़ी दोस्त और अहबाब इकट्ठा हुए थे। उस वक़्त दोस्तों को उनकी दीनी ज़िम्मेदारियाँ याद दिलाई गईं।

25 अप्रैल को सऊदी गज़ेट के सहायक एडीटर इरफ़ान इक़बाल ख़ान साहब इंटरव्यू के लिए पहुँच गए। वक़्त की कमी की वजह से इंटरव्यू आधा-अधूरा रहा तो दोबारा 27 अप्रैल को उन्होंने परेशानी उठाई। इंटरव्यू का ताल्लुक़ ख़ास तौर पर भारत के मुसलमानों और

उनके मसाइल से था। 5 मई को यह इंटरव्यू सऊदी गज़ेट में प्रकाशि हुआ। बाद में यह इंटरव्यू साप्ताहिक रेडियंस में भी छपा। इसी दौर अताउल्लाह साहब और मौलवी मुहम्मद सिद्दीक़ उमरी मदनी साहब साथ मक्तबा अल-मामून जाना हुआ। यहाँ अरबी किताबों का का ज़ख़ीरा है। बहुत-सी उन किताबों को भी देखने का मौक़ा मिला जिन अब तक सिर्फ़ नाम ही सुन रखा था। कुछ किताबों की क़ीमतें भी न कीं।

28 मई (21 ज़िलहिज्जा) को हम दोनों जलील असग़र साहब साथ दोबारा मक्का मुकर्रमा पहुँचे। इस बार ज़्यादातर क़ियाम श मुहम्मद इसमाईल साहब, शैख़ हैदर साहब और तमीज़ुद्दीन सा के यहाँ रहा। यह क़ियाम एक हफ़्ते का था। इस दौरान में कई तवाफ़ की सआदत हासिल हुई। दो-एक बार थकान का एहसास हु तो अह्लिया ने हिम्मत दिलाई कि इस मुबारक मौक़े का ज़्यादा ज़्यादा फ़ायदा उठाना चाहिए। थकान हो तो बर्दाश्त की जाए। एक मस्जिदे-तनईम से एहराम बाँधा और एक और उमरा किया।

एक रोज़ अरशद सिराजुद्दीन साहब के साथ जामिआ उम् क़ुरआन जाना हुआ। कुछ दोस्तों से मुलाक़ातें रहीं। डॉक्टर तल सुल्तान साहब की तालीमात पर बड़ी अच्छी नज़र है। देर तक उ बातें होती रहीं। उन्होंने हमें अपनी कुछ अंग्रेज़ी किताबें भी तोहफ़े दीं।

जामिआ की लाइब्रेरी में भी थोड़ी देर के लिए जाना हुआ। ज अकरम सब्ज़वारी साहब से मुलाक़ात रही। इस दौरान में कई मक्का मुकर्रमा के कुछ मक्तबों में जाना हुआ। जनाब अ सिराजुद्दीन साहब के साथ कुछ किताबें ख़रीदीं।

हमारा पासपोर्ट ज़ाबिते के मुताबिक़ मुअल्लिम के पास था। ज तमीज़ुद्दीन साहब की कोशिश से और उनके एक अरब दोस्त ज़मानत पर वापस मिला। इस तरह इस सिलसिले की परेशानिय अल्लाह ने महफ़ूज़ रखा। एक हफ़्ते के क़ियाम के बाद 6 मई 1 (29 ज़िलहिज्जा 1417 हिजरी) को मक्का मुकर्रमा से रवानगी प्रोग्राम था। ज़ुहर की नमाज़ हरम शरीफ़ में पढ़ी। तवाफ़े-विदाअ कि

बार-बार ख़ुदा के घर को देखा। उन परवानों को देखा जो उसके आस-पास चक्कर लगा रहे थे। यह एहसास दिल व दिमाग़ पर छा गया कि हज जैसी मुक़द्दस इबादत का हक़ न अदा हुआ। जिस तरह हज होना चाहिए, न हो सका। इस मुक़द्दस शहर का सही अर्थों में अदब व एहतिराम भी बाक़ी न रहा। अल्लाह दरगुज़र करे और बार-बार इस घर की ज़ियारत नसीब फ़रमाए।

जनाब तमीज़ुद्दीन साहब के साथ मग़रिब की नमाज़ के बाद जिद्दा रवाना हुए और इशा के वक़्त जिद्दा पहुँचे। क़ियाम पहले की तरह जलील असग़र साहब के यहाँ रहा। यहाँ पहुँचते ही दोस्तों से मुलाक़ातों और ज़ियाफ़तों का सिलसिला ख़ास तौर पर इशा के बाद शुरू हो गया था। एक दिन ख़वातीन भी जमा हुईं। देर तक उनके सामने दीन के तक़ाज़े वाज़ेह किए जाते रहे।

इस दौरान में जनाब लईक़ुल्लाह साहब और मुहम्मद आशिक़ साहब रेडियो इंटरव्यू के लिए आ गए। लईक़ुल्लाह साहब का ताल्लुक़ मेरठ से है और आशिक़ साहब रामपुर के रहनेवाले हैं। रामपुर मेरे लिए वतन की हैसियत रखता है। मेरी जवानी का शुरू का ज़माना वहीं गुज़रा है। बड़ी नज़दीकी महसूस हुई। इन हज़रात ने जो इंटरव्यू लिया था, उसकी पहली क़िस्त 9 मई, मुताबिक़ 2 मुहर्रमुल-हराम 1418 हिजरी जुमा के दिन, चार बजे शाम को और दूसरी क़िस्त दूसरे जुमा को उसी वक़्त नश्र हुई। लईक़ुल्लाह साहब ने उर्दू न्यूज़ के लिए एक लम्बा इंटरव्यू लिया था। यह दो क़िस्तों में शाया हुआ।

एक दिन मौलवी हबीबुल्लाह उमरी से बीस-पच्चीस सालों बाद मुलाक़ात हुई। वे मेरे मुहतरम उस्ताद मौलाना अबुल-बयान हम्माद साहब के छोटे भाई हैं। मैं भी उन्हें भाई समझता हूँ। इनका ताल्लुक़ जिद्दा रेडियो से है। वे मुझे अपने घर ले गए। पिछली बहुत-सी यादें ताज़ा हो गईं।

वतन वापसी

एक हफ़्ता जिद्दा में गुज़रा। बड़ी अच्छी मुलाक़ातें रहीं। रियाज़ के दोस्तों ने भी चाहा कि दो-एक दिन के लिए मैं रियाज़ पहुँच जाऊँ,

लेकिन चूँकि मैं हज वीज़ा पर था, इसलिए हरमैन और जिद्दा वे अलावा कहीं नहीं जा सकता था।

जिद्दा में पूरे एक हफ़्ते क़ियाम के बाद 13 मई को रवानगी थी 12 मई की रात में जनाब तमीज़ुद्दीन साहब अपनी अहलिया के साथ विदा करने आ गए। कुछ देर रहे। एक बजे रात में उनकी वापसी हुई।

हमारा टिकट सऊदिया का था। सुबह सात बजे फ़्लाइट थी उसके लिए चार बजे जलील असग़र साहब के साथ एयरपोर्ट पहुँच गए क़ानूनी कार्रवाइयाँ आसानी के साथ पूरी हो गईं। जहाज़ कुछ देरी से रवाना हुआ। रियाज़ से जब हम दिल्ली एयरपोर्ट पर पहुँचे तो यहाँ शाम के चार बजे थे। बच्चे अलीगढ़ और दिल्ली से एयरपोर्ट पर पहुँच गए थे। साढ़े छः बजे डॉक्टर रफ़अत के घर पहुँचे। दो रोज़ क़ियाम के बाद हम लोग अलीगढ़ लौटे। इस तरह यह मुबारक सफ़र ख़त्म हुआ। फिर दिन-रात की भाग-दौड़ शुरू हो गई जो पहले से चली आ रही थी।

◆◆◆